Registration No. V-36244/2008-09 ISSN :- 2348-0076

JIFE Impact Factor – 7.21

Samajiki Sandarsh

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor
Dr. Kamlesh Kumar Singh
Assistant Professor
Department of Sociology
Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College
Sevapuri, Varanasi

Volume - XIV **No. - 1** **(Jan. – Mar. 2026)**

(Part – I)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Samajiki Sandarsh - *A Refereed Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, U.P.-221001
Mobile No. :- 09336924396
Email- samajikisandarsh@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Samajiki Sandarsh" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2348-0076

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. Sarswati Singh**, Department of Sanskrit, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. Suresh Prasad Rai,** Former-Head, Department of English, S.Sinha College Aurangabad, Bihar
- **Left. Dr. Munna Singh,** Head, Physical Education Department, Handia P.G. College, Handia, Allahabad, U.P.
- **Dr. Bindeshwar Prasad Mandal,** Head, Department of Sociology, B.N. College, Patna University, Patna (Bihar)
- **Dr. Achchelal Yadav,** Head, Physical Education Department, PDU Rajkiya P.G.College, Saidpur, Ghazipur, U.P.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh,** Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Somu Singh,** Assistant Professor, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur

- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

ଔ

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Samajiki Sandarsh,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Samajiki Sandarsh"

➲	प्राचीन भारतीय सभ्यता में धार्मिक आन्दोलन : एक विश्लेषण ***डॉ. जितेन्द्र कुमार कंचन***	01-05
➲	बिहार में 2005–2020 लोकतंत्रिक व्यवस्था पर गठबंधन दलों का प्रभाव ***डॉ. राजमणि कुमारी***	06-10
➲	इस्लाम धर्म में ईश्वर की अवधारणा : विश्लेषणात्मक अध्ययन ***डॉ. अमित कुमार***	11-14
➲	उच्च माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न समायोजित छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन ***डॉ. सुरेन्द्र यादव***	15-18
➲	महिला सशक्तिकरण एवं राष्ट्रनिर्माण का सामाजिक अध्ययन ***डॉ. सुरेन्द्र कुमार यादव***	19-23
➲	राजनीति में आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग के बढ़ता वर्चस्व ***डॉ. राकेश कुमार***	24-27
➲	महिलाओं की स्थिति पर नगरीकरण का प्रभाव ***डॉ. संध्या कुमारी***	28-30
➲	हिन्दी साहित्यिक आलोचना में भारतीय ज्ञान परंपरा और नई शिक्षा नीति की संगति ***डॉ. प्रीतिलता सिंह***	31-34
➲	भारत के उपनिवेश काल में कृषि तकनीक : एक ऐतिहासिक मूल्यांकन ***डॉ. रीता कुमारी सिन्हा***	35-40
➲	मध्यकालीन हरम का संक्षिप्त अध्ययन ***अजित सिंह***	41-45
➲	छायावादी कवियों की शब्दावली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन ***अश्वनी कुमार मिश्र***	46-53
➲	1857 के विद्रोह में पाण्डे गणपत राय का नेतृत्व और योगदान ***डॉ. कन्हैया प्रसाद सिन्हा***	54-57
➲	थाट राग पद्धति का आधुनिक प्रासंगिकता : एक विहंगावलोकन ***डॉ. कविता***	58-60
➲	सुशीला टाक भौरे की कहानियों में स्त्री चेतना और संघर्ष ***डॉ. जगत सिंह कठायत***	61-68

➲	कौशांबी में बौद्ध दर्शन एवं कला : अध्ययन एवं विश्लेषण ***जूली सोनकर*** ***प्रो. भावना चौहान***	69-71
➲	विद्यालयों में बालिका उपिस्थिति में कन्या उत्थान योजना का प्रभाव : बिहार के सन्दर्भ में ***डॉ. सुहाशनी कुमारी***	72-74
➲	महिला नेतृत्व के विकास में स्वयं सहायता समूह (SHG) की भूमिका ***डॉ. मुन्ना सिंह***	75-78
➲	रोहतास जिला की आर्थिक विकास की बाधाएँ एवं निराकरण : समस्याएँ एवं समाधान ***डॉ. सविता सिंह***	79-82

☙❧

प्राचीन भारतीय सभ्यता में धार्मिक आन्दोलन : एक विश्लेषण

डॉ. जितेन्द्र कुमार कंचन*

सार :

प्रस्तुत शोध लेख में प्राचीन भारतीय सभ्यता में धार्मिक आन्दोलन केवल आध्यात्मिक चेतना की अभिव्यक्ति नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक, सांस्कृतिक एवं वैचारिक परिवर्तन के सशक्त माध्यम भी रहे। वैदिक कर्मकांड, यज्ञप्रधान व्यवस्था तथा वर्ण–आधारित सामाजिक संरचना के विरुद्ध उभरे इन आंदोलनों ने व्यक्ति की आंतरिक चेतना, नैतिकता, अहिंसा, करुणा और आत्मानुभूति को केंद्र में स्थापित किया। उपनिषदों, बौद्ध एवं जैन धर्म, तथा श्रमण परंपरा के माध्यम से धार्मिक चिन्तन ने कर्मकांड से दर्शन की ओर तथा बाह्य आडंबर से आंतरिक साधना की ओर संक्रमण किया। प्रस्तुत शोध–लेख का उद्देश्य प्राचीन भारतीय सभ्यता में धार्मिक आंदोलनों के उद्भव, स्वरूप, वैचारिक आधार और सामाजिक प्रभावों का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। यह शोध दर्शाता है कि धार्मिक आंदोलन भारतीय समाज में सामाजिक न्याय, समता, नैतिकता और बौद्धिक स्वतंत्रता के वाहक बने तथा भारतीय सभ्यता की निरंतरता एवं बहुलतावाद को सुदृढ़ किया।

मुख्य शब्द : प्राचीन भारतीय सभ्यता, धार्मिक आन्दोलन, उपनिषद, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, श्रमण परंपरा आदि ।

प्रस्तावना : प्राचीन भारतीय सभ्यता विश्व की उन विरल सभ्यताओं में से एक है, जहाँ धर्म, दर्शन और सामाजिक जीवन परस्पर गहराई से अंतःसंबंद्ध रहे हैं। भारत में धर्म केवल ईश्वर–आराधना या कर्मकांडों तक सीमित न होकर जीवन की संपूर्ण दृष्टि, नैतिक आचरण और सामाजिक संगठन का आधार बना। इसी कारण भारतीय इतिहास में धार्मिक आंदोलनों का स्वरूप विशुद्ध आध्यात्मिक न होकर सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिवर्तन से भी जुड़ा रहा है।[1] प्राचीन काल में उत्पन्न धार्मिक आंदोलनों ने न केवल तत्कालीन धार्मिक परंपराओं की आलोचना की, बल्कि मानव जीवन के उद्देश्य, सामाजिक न्याय और नैतिक मूल्यों की पुनर्व्याख्या भी की।

वैदिक कालीन समाज में यज्ञ, बलि, मंत्र और कर्मकांडों पर अत्यधिक बल था। समय के साथ यह व्यवस्था जटिल होती गई और ब्राह्मण वर्ग का धार्मिक वर्चस्व स्थापित होने लगा। यज्ञों की बढ़ती लागत, धार्मिक अनुष्ठानों की दुरूहता तथा वर्ण–आधारित सामाजिक असमानता ने समाज के व्यापक वर्ग में असंतोष उत्पन्न किया। इसी असंतोष ने वैचारिक प्रश्नों को जन्म दियाकृक्या मुक्ति केवल यज्ञ और कर्मकांड से ही संभव है? क्या जन्म के आधार पर मनुष्य का आध्यात्मिक स्तर निर्धारित किया जा सकता है? इन प्रश्नों ने धार्मिक चिंतन को नई दिशा दी।

उपनिषदों का उदय इसी वैचारिक मंथन का परिणाम था। उपनिषदों ने बाह्य कर्मकांड के स्थान पर आत्मा, ब्रह्म, ज्ञान और आत्मानुभूति को धार्मिक साधना का केंद्र बनाया। यहाँ धर्म व्यक्तिगत अनुभूति और बौद्धिक जिज्ञासा का विषय बन गया।[2] यह परिवर्तन भारतीय धार्मिक इतिहास में एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ, क्योंकि यहीं से दर्शन और धर्म के बीच एक गहरा संवाद स्थापित हुआ।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व के आसपास सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों ने धार्मिक आंदोलनों को और अधिक गति प्रदान की। नगरों का विकास, व्यापार का विस्तार और नए सामाजिक वर्गों का उदय हुआ। इन परिवर्तनों के बीच बौद्ध और जैन धर्म जैसे श्रमण आंदोलनों का उद्भव हुआ, जिन्होंने वैदिक ब्राह्मणवाद की कर्मकांड प्रधान और वर्ग–आधारित व्यवस्था को चुनौती दी। गौतम बुद्ध और महावीर ने अहिंसा, करुणा, समता और नैतिक आचरण को धर्म का मूल तत्व घोषित किया। इन आंदोलनों ने धर्म को जनसाधारण के निकट पहुँचाया और उसे सामाजिक नैतिकता से जोड़ा।

लगभग 600 ई.पू. भारत में एक धार्मिक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ जिसने भारतीय जनमानस को बौद्धिक रूप से आन्दोलित कर दिया। ईसा पूर्व छठी सदी का काल बौद्धिक चिंतन का युग माना जाता है।

* एम.ए., पी–एच0 डी0, प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
E-mail : jkanchan542@gmail.com, Mob. No. 9304592876

इस काल में यूनान में पाइथागोरस, ईरान में जरथ्रुष्ट, चीन में कन्फूसियस और लाओत्से और भारत में बुद्ध और महावीर जैसे चिंतक हुए। इस काल में परंपरागत लौकिक धर्म अपनी गति से चल रहा था और इसमें इंद्र देवता को प्रधान माना जाता था। उसे शक्र और मधवा कहा जाता था। बौद्ध ग्रंथ में ब्रह्मा (बम्मा) का भी उल्लेख है। रूद्र शिव के रूप में जाने जाते थे। पाणिनी ने वासुदेव संप्रदाय की चर्चा की है जो भागवत धर्म से जुड़ा हुआ था। महाभारत में भी कृष्ण पूजा का उल्लेख है। उनके भाई बलदेव (लांगुलिन) के नाम का उल्लेख है। जैन ग्रन्थ में स्कंदकी चर्चा है जो शिव के पुत्र थे। इस युग में भी नाग पूजा की चर्चा होती है। गरुड़ पूजा भी प्रचलित थी। बौद्ध और जैन ग्रंथों में यक्ष पूजा के भी दृष्टांत मिलते हैं। यक्षों के राजा को वेसवन कहा जाता था। उदार एवं परोपकारी यक्ष मणिभद्र था।

एक बौद्ध ग्रंथ में विशुद्ध यज्ञ की चर्चा मिलती है, राजा महाविजित के यज्ञ में गायें नहीं मारी गई, बकरी–भेड़े नहीं मारी गई, मुर्गे–सूअर नहीं काटे गये, न नाना प्रकार के प्राणियों की ही हत्या की गई। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु और गुड़ से ही यज्ञ समाप्त हुआ। मज्झिमनिकाय में उल्लेख आया है कि में यज्ञ प्रक्रिया सरल थी। अट्ठक आदि ऋषियों ने हिंसाविहीन मंत्रों की रचना की थी कितु परवर्ती ब्राह्मणों ने प्राणी हिंसा का प्रावधान किया। बौद्ध साहित्य में रुधिर होम के विवरण भी मिलते हैं।

जैन एवं बौद्ध धर्म के अभ्युत्थान से पूर्व (छठी शताब्दी ईसा पूर्व) अनेक मतमतान्तरों का प्रादुर्भाव हो रहा था। किंतु यह युग मुख्य रूप से निवृतिवादी विचारधारा से विशेषतरू दिखाई पड़ता है। इस युग में क्रान्तिकारी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तन भी हुए। दूसरी ओर धार्मिक क्षेत्र में घटित परिवर्तनों को सर्वथा असम्बद्ध नहीं कहा जा सकता। जहाँ कुछ लोगों ने सहज आध्यात्मिक प्रेरणा से निवृतिवादी धर्म को स्वीकार किया होगा वहीं अन्य लोगों ने सामाजिक हीनता तथा आर्थिक कठिनाइयों से मुक्ति पाने का मार्ग पाया होगा। कठिन सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से त्रस्त लोगों का ऐसे धार्मिक आन्दोलनों की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था जिसमें इन कठिनाइयों से मुक्ति के उपाय निहित हों। इस प्रकार महावीर एवं बुद्ध द्वारा प्रवर्तित जैन एवं बौद्ध धर्म का उदय इस युग की महत्त्वपूर्ण घटना है। बुद्ध और महावीर के अलावा इस युग में कई चिंतक हुए जिन्होंने इस धार्मिक आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार, जहां इस काल में 62 धार्मिक संप्रदाय अस्तित्व में थे, वहीं जैन ग्रंथ सूत्र कृतांग के अनुसार, कुल धार्मिक संप्रदायों की संख्या 363 थी

अजित केशकंबीलनः भारत का सबसे पहला भौतिकवादी चिंतक अजित केशकंबीलन था। अजित केशकंबीलन ने एक पक्के भौतिकवादी चिन्तन का प्रचार किया। उनका मानना था कि अच्छे या बुरे कर्मों का कोई फल नहीं होता। आदमी चाहे जो करे उसका सार भूत में विलीन हो जाता है। दान या दया का मनुष्य की नियति से कोई संबंध नहीं होता। उसका मानना था कि प्रत्येक घटना अपने स्वभाव के अनुरूप होती है। अतरू जो इच्छा है वही करो। इसे यदृच्छावादी कहा गया है। आगे चलकर इससे लोकायत दर्शन का विकास हुआ। इसका प्रतिपादक चार्वाक था।

पुरण कश्यप– सुमंगल विलासिनी के अनुसार, वह एक दास पुत्र था जो अपने स्वामी के घर से भाग गया था। एक बौद्ध जनश्रुति के अनुसार, उसने बुद्ध के परिनिर्वाण के 16वें वर्ष में श्रावस्ती के निकट जलसमाधि ले ली। उसका मानना था कि– न तो कर्म होता है और न पुनर्जन्म। उसे अक्रियावादी कहा जाता है। संभवतः पुरण कश्यप ने ही सांख्य दर्शन की नींव डाली। इसके अनुसार आत्मा शरीर से पृथक है। आगे चलकर पुरण कश्यप के संप्रदाय का मक्खलि गोशाल के संप्रदाय में विलय हो गया ।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व उत्तर भारत के गांगेय प्रदेश (पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार) के जनजीवन में सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से नगरीयकरण, शिल्प समुदाय के विस्तार, व्यवसाय और वाणिज्य में तीव्र विकास, तत्कालीन धर्म एवं दार्शनिक चिन्तन में होने वाले परिवर्तनों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध थे। परम्परागत रूढ़िवादिता एवं नगरों में उभरते नये वर्गों की आकांक्षाओं में होने वाले संघर्ष ने इस प्रक्रिया को गतिशील बनाया होगा जिससे चिन्तन के क्षेत्र में ऐसी एक नवीन शक्ति एवं अद्‌भुत सम्पन्नता का आविर्भाव हुआ जिसने भारत ही नहीं विश्व के बड़े जनसमुदाय को प्रभावित किया। इस बौद्धिक गतिविधि का केन्द्र मगध था। मगध में इस काल में एक विशाल साम्राज्य की नींव भी पड़ रही थी।

इस आन्दोलन के कई प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कारण थे जो तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिवर्तनों में निहित थे। कुछ विद्वानों ने सामाजिक स्तर पर आर्य–अनार्य, ब्राह्मण–क्षत्रिय तथा परम्परागत वर्ण व्यवस्था एवं विभिन्न जातियों में परस्पर संघर्ष की कल्पना की है। वैदिक आर्य नितान्त प्रवृत्तिमार्गी थे, वे सदैव श्रेष्ठ धन एवं ऐश्वर्य की कामना करते थे। इस विचारधारा के प्रति विरोध का आभास समाज के एक प्रबुद्ध

वर्ग में रिग्वेग कल से ही देखने को मिलता है जिसकी अभिव्यक्ति एकेश्वरवादी धरना में देखि जाती है। प्रगार्य इस निवृत्तिमूलक विचारधारा के प्रणेता थे, ऐसी कुछ विद्वानों की धारणा है।

प्राचीन भारतीय धार्मिक आंदोलनों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि वे परस्पर विरोध के साथ–साथ संवाद और समन्वय की प्रक्रिया से भी गुजरे। वैदिक परंपरा, उपनिषदिक चिंतन, बौद्ध–जैन दर्शन और बाद में भक्ति परंपरा सभी ने मिलकर भारतीय सभ्यता को बहुलतावादी स्वरूप प्रदान किया।[3] यहाँ किसी एक धार्मिक मत का पूर्ण वर्चस्व स्थापित नहीं हुआ, बल्कि विभिन्न विचारधाराएँ सह–अस्तित्व में विकसित होती रहीं।

वैदिक धार्मिक आन्दोलन : प्राचीन भारतीय सभ्यता के प्रारम्भिक चरण में वैदिक धर्म का प्रभाव था। इसके प्रमुख स्रोत हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

प्रमुख विशेषताएँ : प्रकृति शक्तियों की उपासना, यज्ञ प्रधान धर्म, ऋत (सार्वभौमिक व्यवस्था) की अवधारणा, देवताओं के माध्यम से सामाजिक एकता, उत्तरवैदिक काल में ब्राह्मण ग्रंथों और आरण्यकों की रचना हुई, जिससे धार्मिक कर्मकाण्ड अधिक जटिल हो गए।

उपनिषदिक आन्दोलन (आध्यात्मिक क्रांति) : जब वैदिक कर्मकाण्ड अत्यधिक जटिल हो गए, तब उपनिषदों के माध्यम से एक दार्शनिक आंदोलन प्रारंभ हुआ। प्रमुख उपनिषद हैं– ईशोपनिषद, कठोपनिषद, छान्दोग्य उपनिषद और बृहदारण्यक उपनिषद।

श्रमण आन्दोलन (बौद्ध और जैन धर्म) : छठी शताब्दी ईसा पूर्व में वैदिक परंपरा के विरुद्ध एक सशक्त धार्मिक आंदोलन उभरा जिसे श्रमण परंपरा कहा गया।

(क) बौद्ध धर्म : इस आंदोलन के प्रवर्तक Gautama Buddha थे। बौद्ध धर्म ने चार आर्य सत्य और अष्टांगिक मार्ग के माध्यम से दुःख से मुक्ति का मार्ग बताया।

(ख) जैन धर्म : जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर डींअपतं ने अहिंसा, अपरिग्रह और सत्य के सिद्धांतों का प्रचार किया।

श्रमण आन्दोलन की विशेषताएँ : कर्मकाण्ड का विरोध, अहिंसा का सिद्धांत, सामाजिक समानता, संघ व्यवस्था इन आंदोलनों ने वर्ण व्यवस्था और ब्राह्मणवादी प्रभुत्व को चुनौती दी तथा सामाजिक सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

महाकाव्य कालीन धार्मिक प्रवृत्तियाँ : महाकाव्य काल में धर्म का स्वरूप अधिक व्यावहारिक और नैतिक हो गया। रामायण और महाभारत में धर्म, कर्तव्य और आदर्श जीवन की व्याख्या की गई।

विशेष रूप से भगवद्गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का समन्वय मिलता है। यह ग्रंथ धार्मिक आंदोलन की समन्वयवादी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है।

गुप्तकालीन पुनरुत्थान और पुराणिक आन्दोलन : गुप्तकाल में ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान हुआ। पुराणों की रचना के माध्यम से धार्मिक विचारों को लोकभाषा में प्रचारित किया गया। प्रमुख पुराणों में विष्णु पुराण और शिव पुराण उल्लेखनीय हैं। इस काल में वैष्णव और शैव संप्रदायों का विकास हुआ तथा भक्ति की भावना को बल मिला।

धार्मिक आंदोलनों का सामाजिक प्रभाव : प्राचीन भारत के धार्मिक आंदोलनों ने समाज को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया – वर्ण व्यवस्था का पुनर्संरचन, अहिंसा और नैतिक मूल्यों का प्रसार, स्त्री एवं शूद्र वर्ग के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन, शिक्षा और मठदृसंघ परंपरा का विकास, कला, स्थापत्य और मूर्तिकला का उत्कर्ष, बौद्ध स्तूप, जैन मंदिर और हिन्दू मंदिर स्थापत्य इन आंदोलनों के सांस्कृतिक परिणाम हैं।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय सभ्यता में धार्मिक आंदोलन केवल धार्मिक सुधार तक सीमित नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक संरचना, नैतिक मूल्यों और मानवीय चेतना के पुनर्निर्माण के प्रयास थे। इन आंदोलनों ने भारतीय समाज को वैचारिक स्वतंत्रता, सहिष्णुता और आध्यात्मिक गहराई प्रदान की। प्रस्तुत शोध–लेख इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्राचीन भारतीय धार्मिक आंदोलनों का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है, ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि इन आंदोलनों ने भारतीय सभ्यता के दीर्घकालीन विकास में किस प्रकार निर्णायक भूमिका निभाई।

साहित्य की समीक्षा

प्राचीन भारतीय सभ्यता में धार्मिक आंदोलनों पर समकालीन विद्वानों द्वारा किए गए अध्ययनों में यह स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है कि ये आंदोलन केवल धार्मिक सुधार की प्रक्रिया नहीं थे, बल्कि वे व्यापक सामाजिक–आर्थिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से गहराई से जुड़े हुए थे। आधुनिक

इतिहासकारों और दार्शनिकों ने धार्मिक आंदोलनों को वैदिक कर्मकांड प्रधान व्यवस्था के प्रति प्रतिक्रिया, सामाजिक असमानता के विरोध और नई वैचारिक चेतना के उदय के रूप में विश्लेषित किया है।

रामशरण शर्मा (2024) ने अपने अध्ययन में यह प्रतिपादित किया है कि छठी शताब्दी ईसा पूर्व में नगरों के विकास, व्यापारिक वर्ग के उदय और उत्पादन संबंधों में आए परिवर्तन ने वैदिक ब्राह्मणवाद की जटिल धार्मिक संरचना को चुनौती दी। उनके अनुसार बौद्ध और जैन धर्म जैसे धार्मिक आंदोलन सामाजिक–आर्थिक यथार्थ की उपज थे, जिन्होंने श्रमण परंपरा के माध्यम से जनसाधारण को धार्मिक विकल्प प्रदान किया।[4]

रोमिला थापर (2006) धार्मिक आंदोलनों को ऐतिहासिक संदर्भ में देखते हुए उन्हें वैचारिक विमर्श और सामाजिक आलोचना की परंपरा से जोड़ती हैं। उनका मत है कि बौद्ध और जैन धर्म ने न केवल वैदिक धर्म की आलोचना की, बल्कि भारतीय सभ्यता में सहिष्णुता और बहुलतावाद की परंपरा को भी सुदृढ़ किया। थापर यह भी रेखांकित करती हैं कि इन आंदोलनों ने धर्म को नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा।[5]

सर्वपल्ली राधाकृष्णन (2021) ने भारतीय धार्मिक आंदोलनों को दार्शनिक चेतना के विकास की दृष्टि से विश्लेषित किया है। उनके अनुसार उपनिषद, बौद्ध और जैन दर्शन भारतीय धार्मिक इतिहास में कर्मकांड से ज्ञान और अनुभव की ओर संक्रमण के प्रतीक हैं। राधाकृष्णन मानते हैं कि इन आंदोलनों ने धर्म को तर्क, विवेक और आत्मानुभूति से जोड़ा।[6]

देवेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय (1989) ने धार्मिक आंदोलनों की भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत करते हुए यह तर्क दिया है कि बौद्ध और जैन आंदोलन तत्कालीन सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया थे। उनके अनुसार धार्मिक विचारधाराएँ समाज से अलग होकर विकसित नहीं होतीं, बल्कि वे भौतिक यथार्थ से गहराई से प्रभावित होती हैं।[7]

सुरेन्द्रनाथ दासगुप्ता (1975) का मत है कि धार्मिक आंदोलनों ने भारतीय दर्शन को एक स्वतंत्र और सुसंगत परंपरा प्रदान की। वे मानते हैं कि उपनिषदों से लेकर बौद्ध और जैन दर्शन तक धार्मिक चिंतन ने तर्क, नैतिकता और आत्मसंयम को केंद्रीय स्थान दिया।[8]

समकालीन अध्ययनों में यह भी स्पष्ट किया गया है कि धार्मिक आंदोलनों का प्रभाव केवल आध्यात्मिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उन्होंने शिक्षा, नैतिक मूल्यों, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक जीवन को भी प्रभावित किया। वर्तमान साहित्य यह संकेत देता है कि प्राचीन भारतीय धार्मिक आंदोलन भारतीय सभ्यता की निरंतरता, वैचारिक स्वतंत्रता और सामाजिक परिवर्तन की आधारशिला रहे हैं।

उद्देश्य

1. प्राचीन भारतीय सभ्यता में धार्मिक आंदोलनों के उद्भव के कारणों का विश्लेषण करना।
2. वैदिक धर्म, उपनिषद, बौद्ध और जैन धर्म के वैचारिक आधार को समझना।
3. धार्मिक आंदोलनों के सामाजिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों का अध्ययन करना।
4. यह स्पष्ट करना कि धार्मिक आंदोलनों ने भारतीय सभ्यता की बहुलतावादी प्रकृति को कैसे सुदृढ़ करना।

निष्कर्ष : प्राचीन भारतीय सभ्यता में धार्मिक आंदोलन ऐतिहासिक विकास की स्वाभाविक परिणति थे। उन्होंने कर्मकांड प्रधान वैदिक व्यवस्था को वैचारिक चुनौती दी और व्यक्ति की आंतरिक चेतना, नैतिक आचरण तथा सामाजिक उत्तरदायित्व पर बल दिया। उपनिषदों ने ब्रह्म–आत्मा की दार्शनिक अवधारणा प्रस्तुत की, बौद्ध धर्म ने करुणा और मध्यम मार्ग को अपनाया, जबकि जैन धर्म ने अहिंसा और आत्मसंयम को सर्वोच्च मूल्य बनाया। इन आंदोलनों ने सामाजिक असमानता, वर्ण–भेद और धार्मिक एकाधिकार के विरुद्ध आवाज उठाई। परिणामस्वरूप भारतीय सभ्यता में वैचारिक सहिष्णुता, दार्शनिक बहुलता और सामाजिक गतिशीलता का विकास हुआ। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि धार्मिक आंदोलन प्राचीन भारत में केवल आध्यात्मिक सुधार नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक परिवर्तन और मानवतावादी चेतना के सशक्त वाहक थे।

संदर्भ सूची

1. अम्बेडकर, भीमराव. (2014) हिन्दू धर्म की पहेलियाँ, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन।
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद (2014) भारतीय संस्कृति और साहित्य, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
3. दिनकर, रामधारी सिंह (2013) संस्कृति के चार अध्याय, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।

4. शर्मा, रामशरण, (2024), प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, नई दिल्ली, ओरिएंट ब्लैकस्वान।
5. थापर, रोमिला, (2006), प्राचीन भारतीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य, नई दिल्ली, पेंगुइन इंडिया।
6. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, (2021), भारतीय दर्शन (खंड–1), दिल्ली, जॉर्ज एलेन एंड अनविन।
7. चट्टोपाध्याय, देवेन्द्रनाथ, (1989), लोकायत : प्राचीन भारतीय भौतिकवाद, नई दिल्ली, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस।
8. दासगुप्ता, सुरेन्द्रनाथ, (1975), भारतीय दर्शन का इतिहास (खंड–1) दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

बिहार में 2005–2020 लोकतंत्रिक व्यवस्था पर गठबंधन दलों का प्रभाव

डॉ. राजमणि कुमारी*

सारः–

बिहार का राजनीतिक परिदृश्य भारतीय लोकतंत्र में हमेशा ही महत्वपूर्ण और विशेष रहा है। राज्य की लोकतांत्रिक व्यवस्था पर क्षेत्रीय दलों और गठबंधन राजनीति का प्रभाव 1990 के दशक से लगातार देखने को मिला है। इस अवधि के बाद, विशेषकर 2005 से 2020 तक, बिहार में गठबंधन दलों की भूमिका और प्रभाव ने राज्य के राजनीतिक, सामाजिक और प्रशासनिक ढांचे को गहराई से प्रभावित किया। भारतीय लोकतंत्र में बहुदलीय प्रणाली के तहत राज्य स्तर पर क्षेत्रीय दलों का महत्व स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। बिहार इस संदर्भ में विशेष उदाहरण प्रस्तुत करता है क्योंकि यहां बड़े राष्ट्रीय दलों और छोटे क्षेत्रीय दलों के बीच गठबंधन और सहयोग की परंपरा ने सत्ता की राजनीति को अधिक जटिल और गतिशील बना दिया।

मूल शब्द– बिहार की राजनीति, शासन और प्रशासन, क्षेत्रीय राजनीतिक दल, गठबंधन राजनीति एवं नेतृत्व क्षमता आदि।

बिहार में 2005 के बाद, नितिश कुमार के नेतृत्व में जनता दल (यूनाइटेड) और विभिन्न राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दलों के गठबंधन ने बिहार की लोकतांत्रिक व्यवस्था को नया स्वरूप दिया। इस कार्यकाल में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) और जनता दल (यू) का गठबंधन एनडीए के रूप में स्थापित हुआ, जबकि विपक्ष में राष्ट्रीय जनता दल (आरजेडी) और कांग्रेस जैसी पार्टियों का गठबंधन महागठबंधन के रूप में सामने आया। इन गठबंधनों ने केवल सत्ता संरचना को प्रभावित नहीं किया, बल्कि नीति निर्माण, प्रशासनिक सुधार, विकास योजनाओं के क्रियान्वयन और सामाजिक समावेश पर भी गहरा प्रभाव डाला। बिहार के राजनीतिक परिदृश्य में क्षेत्रीय दलों की भूमिका केवल चुनावी लड़ाई तक सीमित नहीं रही, बल्कि उन्होंने सरकार बनाने, गठबंधन का नेतृत्व करने और राज्य की नीतियों को प्रभावित करने में निर्णायक भूमिका निभाई।

इस अवधि में बिहार में गठबंधन राजनीति ने सामाजिक और आर्थिक विकास पर भी अप्रत्यक्ष प्रभाव डाला। राज्य में शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क, बिजली, कृषि और महिला सशक्तिकरण के क्षेत्रों में विभिन्न योजनाओं का कार्यान्वयन गठबंधन दलों की सहमति और सहयोग के बिना कठिन था। उदाहरण के लिए, आंगनवाड़ी, स्वास्थ्य और पोषण योजनाओं को लागू करने में राज्य सरकार को विभिन्न दलों की भागीदारी की आवश्यकता पड़ी। इसी प्रकार, ग्रामीण और शहरी बुनियादी ढांचे के विकास, स्मार्ट सिटी परियोजनाओं, सड़क और पुल निर्माण, जल संरक्षण और कृषि समर्थन योजनाओं में गठबंधन राजनीति ने नीतिगत निर्णयों की दिशा तय की।

गठबंधन राजनीति का प्रभाव न केवल प्रशासनिक दृष्टिकोण पर पड़ा, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में भी देखा गया। बिहार में विभिन्न जातीय, सामाजिक और क्षेत्रीय समूहों के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए गठबंधन दलों ने नीति निर्माण में सामूहिक दृष्टिकोण अपनाया। दलित, पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक और महिलाओं के कल्याण की योजनाओं में विभिन्न दलों के विचारों का समावेश किया गया। इससे राज्य की लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सामाजिक समावेश और बहुलवाद की विशेषता उभरी।

इस प्रकार वर्ष 2005–2020 के बीच बिहार में लोकतंत्र पर गठबंधन दलों का प्रभाव यह स्पष्ट करता है कि क्षेत्रीय दल और गठबंधन प्रणाली भारतीय लोकतंत्र में केवल सत्ता संघर्ष का माध्यम नहीं, बल्कि नीति निर्माण, सामाजिक विकास और प्रशासनिक सुधार का भी महत्वपूर्ण कारक हैं। राज्य में क्षेत्रीय दलों की भागीदारी ने लोकतांत्रिक स्थायित्व, नीति पारदर्शिता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा दिया। इस संदर्भ में, बिहार एक आदर्श उदाहरण बनता है कि कैसे बहुदलीय प्रणाली और गठबंधन राजनीति ने राज्य के लोकतांत्रिक ढांचे को मजबूत किया और विकास की दिशा में सतत योगदान दिया।

---

* एम0 ए0, पी–एच0डी0, राजनीति विज्ञान विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
Mob. No.: 9334390170, E-mail Id : Drrajmanikumari@gmail.com

इस अध्ययन का उद्देश्य 2005–2020 तक बिहार में गठबंधन राजनीति के प्रभाव, क्षेत्रीय दलों की भूमिका और उनके योगदान का विश्लेषण करना है। यह शोध बिहार में लोकतंत्र की बहुलवादी संरचना, सत्ता के गठबंधन, क्षेत्रीय दलों की रणनीति और राजनीतिक स्थिरता पर प्रकाश डालता है। बिहार में सत्ता संघर्ष, गठबंधन निर्माण और क्षेत्रीय दलों की भागीदारी ने राज्य को राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर राजनीतिक महत्व दिलाया। इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट किया जाएगा कि कैसे गठबंधन और क्षेत्रीय दलों की राजनीति ने बिहार में लोकतंत्र को मजबूत किया, नीति निर्माण में योगदान दिया और सामाजिक–आर्थिक विकास को प्रभावित किया।

भारतीय लोकतंत्र में क्षेत्रीय दलों की भूमिका पर कई शोध हुए हैं। अध्ययन बताते हैं कि क्षेत्रीय दल केवल सत्ता संघर्ष तक सीमित नहीं रहते, बल्कि राज्य स्तर पर नीति निर्माण, सामाजिक समावेश और विकास योजनाओं पर भी प्रभाव डालते हैं।

चंद्रा, के. (2004) ने भारतीय राज्य राजनीति पर शोध में निष्कर्ष निकाला कि क्षेत्रीय दल बहुदलीय लोकतंत्र में सत्ता संतुलन और नीति निर्माण के लिए महत्वपूर्ण हैं। बिहार को उन्होंने क्षेत्रीय दलों के प्रभाव के एक आदर्श मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया।[1]

जैफरलॉट, क्रिस्टॉफ (2011) ने भारतीय राज्य राजनीति में जातीय और क्षेत्रीय दलों के प्रभाव का अध्ययन किया। उनके अनुसार, बिहार में जातीय और क्षेत्रीय गठबंधनों ने सत्ता संरचना और चुनावी रणनीति पर गहरा प्रभाव डाला।[2]

वर्मा. आर. (2013) के अध्ययन में नितिश कुमार के नेतृत्व में जनता दल (यू) और भाजपा गठबंधन (एनडीए) के कार्यकाल का विश्लेषण किया गया। उनका निष्कर्ष यह है कि गठबंधन ने नीति निर्माण और प्रशासनिक सुधारों में स्थायित्व लाया।[3]

कुमार एस. (2016) ने लिखा कि बिहार में सामाजिक समावेश और पिछड़े वर्गों के विकास के लिए गठबंधन राजनीति महत्वपूर्ण रही। विशेष रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण और ग्रामीण विकास के क्षेत्र में गठबंधन दलों की सक्रिय भागीदारी रही।[4]

यादव, पी. (2018) ने राजनीतिक गठबंधनों के प्रभाव को चुनावी परिणाम, नीति कार्यान्वयन और सामाजिक विकास के दृष्टिकोण से देखा। उनके निष्कर्षों के अनुसार, बिहार की लोकतांत्रिक स्थिरता और बहुलवादी संरचना में गठबंधन दलों की भागीदारी निर्णायक रही।[5]

संदीप शास्त्री (2007) ने "बिहार की राजनीति और शासनरू एक अवलोकन" में बिहार की राजनीतिक संरचना, प्रशासनिक तंत्र तथा शासन–व्यवस्था का विश्लेषण किया। अध्ययन में पाया गया कि 1990 के दशक के बाद बिहार की राजनीति में सामाजिक न्याय की विचारधारा ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया, किंतु प्रशासनिक अक्षमता, भ्रष्टाचार और कमजोर संस्थागत संरचना के कारण शासन–प्रदर्शन प्रभावित रहा।[6]

सिंह एवं कुमार (2015) ने "बिहार में शासन और विकास– एनडीए का युग" शीर्षक अध्ययन में एनडीए शासनकाल के दौरान बुनियादी ढाँचे, शिक्षा और विधि–व्यवस्था में हुए सुधारों का विश्लेषण किया। उनका निष्कर्ष है कि गठबंधन सरकार के बावजूद नीति–निर्माण में अपेक्षाकृत स्थिरता और विकासोन्मुखी दृष्टिकोण देखने को मिला।[7]

मनोर जे (1999) ने भारत में गठबंधन राजनीति और राजनीतिक स्थिरता पर चर्चा करते हुए बताया कि बहुदलीय प्रणाली में गठबंधन सरकारें लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व को बढ़ाती हैं, परंतु नीतिगत निरंतरता बनाए रखना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।[8]

भारत निर्वाचन आयोग (2020) की बिहार विधान सभा चुनावों की सांख्यिकीय रिपोर्टों से राज्य में मतदाता व्यवहार, दलगत प्रतिस्पर्धा और गठबंधन संरचना के पैटर्न का तथ्यात्मक आधार प्राप्त होता है। ये आँकड़े राजनीतिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण में सहायक हैं। बिहार राज्य विकास रिपोर्ट राज्य के आर्थिक, सामाजिक और मानव विकास संकेतकों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करती है, जिससे शासन–प्रदर्शन का मूल्यांकन संभव होता है।[9]

राधवन (2010) ने बिहार में लोकतंत्र और विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन करते हुए पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका और स्थानीय शासन में भागीदारी के विस्तार को रेखांकित किया।[10]

सिन्हा (2012) ने भारत में क्षेत्रीय दलों और गठबंधन सरकारों के उभार का विश्लेषण करते हुए यह दर्शाया कि राज्यों में राजनीतिक स्थिरता अक्सर दलों के वैचारिक लचीलेपन और नेतृत्व क्षमता पर निर्भर करती है।[11]

झा (2014) ने "बिहार में विकास और शासन– नीतीश कुमार का युग" में प्रशासनिक सुधारों, सड़क निर्माण, शिक्षा में प्रोत्साहन योजनाओं और महिला सशक्तिकरण पहलों का विश्लेषण किया। उनका तर्क है कि सुशासन की अवधारणा को संस्थागत रूप देने का प्रयास बिहार में इस अवधि में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। बिहार सरकार के एक वार्षिक रिपोर्टें शासन, आधारभूत संरचना, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सामाजिक विकास कार्यक्रमों की प्रगति का आधिकारिक विवरण प्रदान करती हैं।[12]

मिश्रा एवं सिंह (2018) ने बिहार में गठबंधन राजनीति और उसके नीति–परिणामों का विश्लेषण करते हुए निष्कर्ष निकाला कि गठबंधन संरचना नीतिगत प्राथमिकताओं और संसाधन आवंटन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।[13]

योगेंद्र यादव (2009) ने बिहार में गठबंधन राजनीति के दस वर्षों का विश्लेषण करते हुए यह रेखांकित किया कि सामाजिक समीकरण, नेतृत्व शैली और वैचारिक समझौते गठबंधन की सफलता या विफलता के प्रमुख निर्धारक रहे हैं।[14]

बिहार में क्षेत्रीय दलों की भूमिका और प्रभाव पर उल्लेख है कि क्षेत्र में भागीदारी–सत्ता निर्माण और गठबंधन राजनीति– बड़े राष्ट्रीय दलों को अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए क्षेत्रीय दलों का समर्थन लेना पड़ा। जब कि नीति निर्माण और प्रशासनिक सुधार– शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, सड़क और बिजली परियोजनाओं में निर्णयों का सामूहिक प्रभाव। सामाजिक समावेश और बहुलवाद, जातीय, सामाजिक और क्षेत्रीय विविधताओं के प्रतिनिधित्व की दिशा में नीति निर्माण। गठबंधन राजनीति के कारण सत्ता संघर्ष संतुलित और लंबे समय तक स्थिर रहा। बिहार में क्षेत्रीय दलों की भूमिका केवल चुनावी या प्रतीकात्मक नहीं थी, बल्कि यह राज्य के लोकतांत्रिक ढांचे और विकास कार्यों में वास्तविक और निर्णायक प्रभाव डाल रही थी। वहीं बिहार में नितिश के नेतृत्व में गठबंधन राजनीति ने राज्य की लोकतांत्रिक प्रक्रिया को मजबूत किया। क्षेत्रीय दलों और गठबंधन साझेदारियों ने न केवल प्रशासनिक और नीति सुधारों को प्रभावित किया, बल्कि सामाजिक और आर्थिक विकास में भी योगदान दिया। शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण और शहरी बुनियादी ढांचे, कृषि और डिजिटल प्रशासन में गठबंधन दलों की सक्रिय भागीदारी ने बिहार के बहुलवादी लोकतंत्र को मजबूत किया।

अध्ययन की आवश्यकता

बिहार भारतीय लोकतंत्र में एक अनूठा राज्य रहा है, जहाँ बहुदलीय व्यवस्था और क्षेत्रीय दलों का राजनीतिक प्रभाव हमेशा महत्वपूर्ण रहा है। 2005–2020 के बीच बिहार में गठबंधन राजनीति ने राज्य की लोकतांत्रिक प्रक्रिया, नीति निर्माण और विकास योजनाओं पर गहरा प्रभाव डाला। इस अवधि में बड़े राष्ट्रीय दल (जैसे भाजपा, कांग्रेस) और क्षेत्रीय दल (जैसे जेडीयू, आरजेडी, एलजेपी) के बीच गठबंधन राजनीति ने केवल सत्ता संतुलन तय नहीं किया, बल्कि सामाजिक और आर्थिक विकास की दिशा भी प्रभावित की।

अध्ययन की आवश्यकता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि देश में मोरारजी देसाई के प्रधानमंत्री (1977–1979) बनने का बिहार की राजनीति और शासन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, विशेषकर आपातकाल के बाद के दौर में बिहार में व्यापक असंतोष था, विशेषकर छात्र और समाजवादी आंदोलनों में दिखाई पड़ता है। ज्ञात हो कि आपातकाल के बाद राजनीति में 1977 के आम चुनाव में जनता पार्टी की जीत ने बिहार में कांग्रेस के वर्चस्व को तोड़ा। इससे राज्य में गैर–कांग्रेसी और समाजवादी राजनीति को मजबूती मिली।

लोकतांत्रिक में समाजवादी और जन आंदोलन से बिहार पहले से ही जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में चले 'संपूर्ण क्रांति आंदोलन' का केंद्र रहा था। उसमें मोरारजी देसाई के नेतृत्व में बनी जनता सरकार ने इन आंदोलनों को वैचारिक वैधता दी। इससे बिहार में लोकदल, समाजवादी और अन्य क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ़ा। 1977 के बाद बिहार में कांग्रेस का प्रभुत्व कमजोर हुआ, जिससे आगे चलकर लालू प्रसाद यादव, नीतीश कुमार जैसे नेताओं के उदय के लिए अनुकूल बनी और गठबंधन और गैर–कांग्रेसी राजनीति की परंपरा मजबूत हुई।

इस प्रकार मोरारजी देसाई का बिहार पर प्रभाव प्रत्यक्ष प्रशासनिक सुधारों से अधिक राजनीतिक था। उनके कार्यकाल ने बिहार में लोकतांत्रिक पुनरुत्थान, समाजवादी राजनीति के सशक्तिकरण और कांग्रेस–विरोधी गठबंधन राजनीति की मजबूत आधारशिला रखी। इसमें बिहार में क्षेत्रीय दलों की भूमिका और

गठबंधन राजनीति की महत्वता पर विस्तृत और विश्लेषणात्मक अध्ययन अभी तक सीमित है। वर्तमान समय में बिहार का राजनीतिक मॉडल राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लोकतांत्रिक बहुलवाद का उदाहरण माना जाता है। इस अध्ययन के माध्यम से यह समझा जा सकेगा कि कैसे गठबंधन और क्षेत्रीय दलों की राजनीति ने लोकतांत्रिक प्रक्रिया, शासन और विकास पर स्थायी प्रभाव डाला।

अध्ययन का क्षेत्र

अध्ययन का भौगोलिक और राजनीतिक क्षेत्र बिहार राज्य है। यह क्षेत्र विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समूहों का मिश्रण है, जहाँ जातीय, सामाजिक और क्षेत्रीय विविधताएँ स्पष्ट रूप से राजनीति को प्रभावित करती हैं। अध्ययन का कालखंड 2005 से 2020 तक का है, जो छपजपेी ज्ञनउंत के कार्यकालों और गठबंधन राजनीति के विकास को समेटता है। राजनीतिक दलों के गठबंधन, नीति निर्माण, चुनावी रणनीति और सामाजिक विकास के पहलुओं को केंद्र में रखते हुए यह अध्ययन राज्य के लोकतांत्रिक ढांचे और क्षेत्रीय दलों के प्रभाव का विश्लेषण करता है।

अध्ययन का उद्देश्य

i. बिहार में 2005–2020 तक गठबंधन राजनीति का प्रभाव समझना।
ii. आपातकाल के बाद के दौर में बिहार में क्षेत्रीय दलों की भूमिका और उनके योगदान का विश्लेषण करना।
iii. यह अध्ययन करना कि गठबंधन राजनीति ने नीति निर्माण, शासन और विकास योजनाओं पर किस प्रकार प्रभाव डाला।
iv. सामाजिक समावेश, महिला सशक्तिकरण, शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्रों में गठबंधन दलों के निर्णयों का मूल्यांकन।
v. बिहार के लोकतांत्रिक स्थायित्व और बहुलवादी लोकतंत्र में क्षेत्रीय दलों की भूमिका को उजागर करना।

परिकल्पना

i. 2005–2020 तक बिहार में गठबंधन राजनीति ने राज्य की लोकतांत्रिक स्थिरता और नीति निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाई।
ii. क्षेत्रीय दलों की भागीदारी केवल चुनावी लड़ाई तक सीमित नहीं थी, बल्कि उन्होंने प्रशासनिक सुधार और सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
iii. गठबंधन राजनीति ने सामाजिक समावेश, पिछड़े वर्गों और महिलाओं के विकास के लिए नीति निर्माण को प्रभावित किया।

परिणाम

2005–2020 तक जनता दल (यू) और राष्ट्रीय जनता दल (आरजेडी) जैसे क्षेत्रीय दलों ने गठबंधन राजनीति के माध्यम से सत्ता संरचना और नीति निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाई।

नितिश के नेतृत्व में गठबंधन दलों ने शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, सड़क, बिजली और कृषि जैसे क्षेत्रों में विकास कार्यों को लागू किया। गठबंधन दलों के कारण नीति निर्माण में सामूहिक दृष्टिकोण अपनाया गया और सामाजिक विविधताओं का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हुआ। चुनावी रणनीति, सत्ता निर्माण और गठबंधन साझेदारियों के माध्यम से राजनीतिक स्थायित्व बना, जिससे लंबे समय तक प्रशासनिक सुधार संभव हुए।

चर्चा– बिहार का राजनीतिक परिदृश्य बहुदलीय और बहु–सांस्कृतिक है। इसने यह स्पष्ट किया कि क्षेत्रीय दल और गठबंधन राजनीति केवल सत्ता संघर्ष का माध्यम नहीं हैं, बल्कि लोकतांत्रिक स्थायित्व और विकास कार्यों के क्रियान्वयन में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। छपजपेी ज्ञनउंत के कार्यकाल में गठबंधन दलों ने नीति निर्माण में सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की, जिससे सामाजिक और आर्थिक विकास के क्षेत्र में संतुलित निर्णय लिए गए। शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण और ग्रामीण विकास में गठबंधन दलों का योगदान स्पष्ट रूप से देखा गया। इसके अतिरिक्त, गठबंधन राजनीति ने सामाजिक और क्षेत्रीय विविधताओं का प्रतिनिधित्व किया, जिससे लोकतंत्र की बहुलवादी प्रकृति को मजबूती मिली।

यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि राजनीतिक स्थिरता और विकास कार्यों का क्रियान्वयन गठबंधन दलों और क्षेत्रीय पार्टियों के सहयोग से संभव हुआ। जब राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दल एकजुट होकर नीति निर्माण

और प्रशासनिक सुधारों को लागू करते हैं, तो राज्य में लोकतंत्र अधिक सक्रिय, समावेशी और विकासोन्मुख होता है।

निष्कर्ष– इस अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि 2005–2020 तक बिहार में गठबंधन दलों और क्षेत्रीय पार्टियों का लोकतांत्रिक प्रक्रिया, नीति निर्माण और विकास कार्यों पर महत्वपूर्ण प्रभाव रहा। क्षेत्रीय दलों ने सत्ता निर्माण, गठबंधन साझेदारी और सामाजिक समावेश में निर्णायक भूमिका निभाई। नितिश कुमार के नेतृत्व में गठबंधन राजनीति ने बिहार में शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, सड़क और बुनियादी ढांचे, कृषि और डिजिटल प्रशासन जैसे क्षेत्रों में स्थायी सुधार सुनिश्चित किया। इस प्रकार, बिहार का यह मॉडल भारतीय लोकतंत्र में बहुदलीय प्रणाली और गठबंधन राजनीति के महत्व को स्पष्ट करता है और राज्य के लोकतांत्रिक और विकासात्मक ढांचे में क्षेत्रीय दलों की भूमिका को उजागर करता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. चंद्र, के. (2004) भारतीय राजनीति में जातीय पार्टियों की सफलता– लोकाधिकार और जातीय गणना। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू यॉर्क।
2. जैफरलॉट, क्रिस्टोफ (2011) भारत का लोकतंत्रः राज्य राजनीति का विश्लेषण। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
3. वर्मा, र. (2013) बिहार में गठबंधन राजनीति– शासन और विकास। इंडियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस, 74(2), 211–232।
4. कुमार, एस. (2016) बिहार में क्षेत्रीय दल और नीति कार्यान्वयन। जर्नल ऑफ इंडियन पॉलिटिक्स, 12(1), 45–68।
5. यादव, पी. (2018) चुनावी गठबंधन और लोकतांत्रिक स्थिरता, बिहार की गठबंधन राजनीति (2005–2015)। इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 53(28), 56–65।
6. शास्त्री, संदीप (2007) बिहार की राजनीति और शासन– एक अवलोकन। रूटलेज इंडिया, नई दिल्ली।
7. सिंह, आर. एवं कुमार, ए. (2015) बिहार में शासन और विकास– एनडीए का युग। जर्नल ऑफ गवर्नेंस स्टडीज, 7(3), 101–130।
8. मेनोर, जेम्स (1999) भारत में गठबंधन और राजनीतिक स्थिरता। एशियन सर्वे, 39(5), 813–830।
9. भारत निर्वाचन आयोग (2005–2020) बिहार विधान सभा चुनावों की सांख्यिकीय रिपोर्ट। निर्वाचन आयोग, नई दिल्ली।
10. राघवन, टी.सी.ए. (2010) बिहार में लोकतंत्र और विकेंद्रीकरण। इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 45(36), 21–29।
11. सिन्हा, ए. (2012) भारत में क्षेत्रीय राजनीतिक दल और गठबंधन सरकारें। जर्नल ऑफ पॉलिटिकल स्टडीज, 24(1), 77–95।
12. झा, पी. (2014) बिहार में विकास और शासनः नीतीश कुमार का युग। इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 60(3), 345–366।
13. मिश्रा, के. एवं सिंह, वी. (2018) बिहार में गठबंधन राजनीति और नीति परिणाम। इंडियन पॉलिटिकल साइंस रिव्यू, 52(2), 134–156।
14. यादव, योगेंद्र (2009) बिहार में गठबंधन राजनीति के दस वर्ष, इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 44(28), 65–73।

इस्लाम धर्म में ईश्वर की अवधारणा : विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. अमित कुमार*

शोध–सार :

प्रस्तुत शोध–लेख ''इस्लाम धर्म में ईश्वर की अवधारणा : विश्लेषणात्मक अध्ययन' का अध्ययन है। इस्लाम में ईश्वर की अवधारणा, जिसे अल्लाह की संकल्पना कहा जाता है, मूलतः एकेश्वरवाद अर्थात् तौहीद के सिद्धांत पर आधारित है। इस धर्म के अनुसार ईश्वर एकमात्र, अद्वितीय, निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापी सत्ता है। वह न किसी से उत्पन्न हुआ है और न ही किसी को उत्पन्न करता है, तथा उसका कोई समकक्ष या सहभागी नहीं है। प्रस्तुत शोध–लेख का लक्ष्य इस्लाम में ईश्वर की अवधारणा का दार्शनिक, धार्मिक एवं सामाजिक संदर्भों में सम्यक् विश्लेषण करना है। इस अध्ययन में पवित्र ग्रंथ कुरआन, पैगंबर मुहम्मद के उपदेशों (हदीस साहित्य) तथा प्रमुख इस्लामी दार्शनिकों अबू हामिद अल–गजाली, इब्न सीना और इब्न रश्द के विचारों का विवेचन किया गया है। यह लेख प्रतिपादित करता है कि इस्लाम में ईश्वर की धारणा मात्र आध्यात्मिक आस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि वह नैतिक मूल्यों, न्याय की स्थापना और सामाजिक संरचना के संगठन का भी केंद्रीय आधार है।

मुख्य शब्द : तौहीद, अल्लाह, कुरआन, इस्लामी दर्शन, शिर्क, रहमत, न्याय आदि।

प्रस्तावना : ईश्वर की अवधारणा प्रत्येक धर्म की दार्शनिक और आध्यात्मिक संरचना का मूलाधार होती है। इस्लाम धर्म में यह अवधारणा विशेष रूप से केन्द्रीय और निर्णायक है, क्योंकि समस्त धार्मिक आचरण, नैतिक मानदंड और सामाजिक व्यवस्था "तौहीद" के सिद्धांत पर आधारित हैं। इस्लाम का उद्भव 7वीं शताब्दी में अरब प्रायद्वीप में हुआ, जहाँ बहुदेववाद, कबीलाई संरचना और मूर्तिपूजा का प्रचलन था। ऐसे ऐतिहासिक संदर्भ में पैगंबर मुहम्मद द्वारा प्रस्तुत एकेश्वरवाद ने न केवल धार्मिक चेतना को परिवर्तित किया, बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक क्रांति का भी सूत्रपात किया।

इस्लाम में ईश्वर को "अल्लाह" कहा गया है, जो अद्वितीय, निराकार, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है। पवित्र ग्रंथ कुरआन में ईश्वर के स्वरूप, गुण और कार्य–व्यापार का विस्तृत वर्णन मिलता है। कुरआन के अनुसार अल्लाह सृष्टि का रचयिता, पालनकर्ता और अंतिम न्यायाधीश है। वह मानव इतिहास और नैतिकता का परम नियंता है, किंतु साथ ही अत्यंत दयालु और करुणामय भी है। इस प्रकार इस्लामी ईश्वर–धारणा में न्याय और दया का अद्वितीय संतुलन दिखाई देता है।

दार्शनिक दृष्टि से इस्लाम की ईश्वर अवधारणा केवल आस्था का विषय नहीं, बल्कि तर्क और चिंतन का भी विषय रही है। मध्यकालीन इस्लामी दार्शनिकों जैसे इब्न सीना, अबू हामिद अल–गजाली और इब्न रश्द ने ईश्वर के अस्तित्व, उसकी सत्ता और मानव बुद्धि के साथ उसके संबंध पर गहन विमर्श प्रस्तुत किया। इन चिंतकों ने तर्कवाद, अनुभववाद और सूफी आध्यात्मिकता के माध्यम से ईश्वर के स्वरूप को समझने का प्रयास किया।

साथ ही, इस्लाम की ईश्वर–धारणा अन्य एकेश्वरवादी परंपराओं विशेषतः यहूदी और ईसाई धर्मकृसे संवाद करती है, किंतु अपनी विशिष्टता बनाए रखती है। इस्लाम में ईश्वर का कोई अवतार नहीं होता, न ही वह किसी रूप में विभाजित होता है। यह अवधारणा पूर्ण एकत्व पर आधारित है, जिसे "तौहीद" कहा जाता है।

समकालीन वैश्विक परिप्रेक्ष्य में, जब धार्मिक बहुलता, अंतर–धार्मिक संवाद और धर्मनिरपेक्षता पर व्यापक विमर्श हो रहा है, इस्लाम की ईश्वर अवधारणा का विश्लेषण अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। यह न केवल धर्मशास्त्रीय अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक न्याय, मानव समानता और नैतिक उत्तरदायित्व की समझ के लिए भी आवश्यक है।

* पी–एच. डी., स्नातकोत्तर दर्शनशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार
E-mail: amitkum6914@gmail.com, Mob. : 8789984673

इस्लाम में तौहीद (एकेश्वरवाद) को तीन भागों में समझा जाता है –

1. तौहीद–अर–रुबूबिय्यह : ईश्वर ही सृष्टिकर्ता और पालनकर्ता है।
2. तौहीद–अल–उलूहिय्यह : केवल उसी की उपासना की जानी चाहिए।
3. तौहीद–अल–अस्मा वस्सिफात : ईश्वर के नाम और गुण अद्वितीय हैं।

कुरआन की सूरह अल–इखलास में कहा गया है कि ईश्वर एक है, न वह जन्म देता है, न जन्म लिया है। यह अवधारणा इस्लाम को बहुदेववाद और अवतारवाद से पृथक करती है।

कुरआनिक दृष्टिकोण

- कुरआन में अल्लाह को "रहमान" (अत्यंत दयालु) और "रहीम" (करुणामय) कहा गया है। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और न्यायप्रिय है।
- इस्लामी दृष्टि में ईश्वर का स्वरूप निराकार है, वह किसी रूप, मूर्ति या प्रतिमा में सीमित नहीं हो सकता। इस कारण इस्लाम में मूर्तिपूजा का स्पष्ट निशेध है।

इस्लामी दर्शन में ईश्वर

(क) अल–गजाली का दृष्टिकोण : अबू हामिद अल–गजाली ने ईश्वर को परम सत्य और ज्ञान का स्रोत माना। उन्होंने तर्क और रहस्यवाद (सूफीवाद) के माध्यम से ईश्वर की अनुभूति पर बल दिया।

(ख) इब्न सीना : इब्न सीना ने ईश्वर को "अनिवार्य अस्तित्व" कहा। उनके अनुसार ईश्वर का अस्तित्व स्वयंसिद्ध है।

(ग) इब्न रश्द : इब्न रश्द ने तर्कवाद के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयास किया और दर्शन तथा धर्म के सामंजस्य पर बल दिया।

ईश्वर और नैतिक व्यवस्था

- इस्लाम में ईश्वर की अवधारणा नैतिकता से गहराई से जुड़ी है। अल्लाह न्यायप्रिय है और प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्मों के अनुसार प्रतिफल देता है। कयामत (प्रलय) का सिद्धांत इस न्याय व्यवस्था को स्पष्ट करता है।
- ईश्वर की दया और न्याय का संतुलन इस्लामी सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला है। जकात, रोजा, नमाज और हज जैसे कर्तव्य ईश्वर के प्रति समर्पण और सामाजिक समानता का प्रतीक हैं।

तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य : इस्लाम का ईश्वर–तत्व यहूदी और ईसाई परंपराओं से निकटता रखता है, किंतु त्रित्व सिद्धांत को अस्वीकार करता है। इस्लाम में ईश्वर पूर्णतः एक और अद्वितीय है।

समकालीन संदर्भ : आधुनिक युग में इस्लाम की ईश्वर अवधारणा को वैश्विक संवाद, धार्मिक सहिष्णुता और अंतर–धार्मिक विमर्श के संदर्भ में देखा जा रहा है। यह अवधारणा नैतिक उत्तरदायित्व, मानवाधिकार और सामाजिक न्याय की दिशा में प्रेरक सिद्ध होती है।

अतः इस शोध का उद्देश्य इस्लाम धर्म में ईश्वर की अवधारणा का दार्शनिक, धार्मिक और सामाजिक आयामों में विश्लेषण करना है, ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि इस्लामी एकेश्वरवाद केवल आध्यात्मिक सिद्धांत नहीं, बल्कि एक व्यापक जीवन–दर्शन है, जो व्यक्तिगत आचरण से लेकर सामूहिक सामाजिक संरचना तक को प्रभावित करता है।

साहित्य समीक्षा

खालिद, अहमद अली (2023), इस्लामी तौहीद : एक मूल्यांकन। दारुल इल्म पब्लिकेशन्स। इस अध्ययन में आधुनिक मुस्लिम विद्वानों की दृष्टि से तौहीद की व्याख्या और उसकी सामाजिक आवश्यकताओं पर विचार किया गया है। यह कुरआनी शिक्षाओं को समकालीन नैतिक विमर्श के चौखट में प्रस्तुत करता है।[1]

इब्न रश्द, अबू अल–वालिद मोहम्मद (2022) तहाफुत अल–तहाफुत (व्याख्यात्मक अनुवाद)। ओरिएंट पब्लिकेशन्स। दर्शन और धर्म के बीच सामंजस्य की अवधारणा पर यह ग्रंथ समकालीन विश्लेषण में बार–बार उद्धृत होता है।[2]

शेख समीरा फातिमा (2021) तौहीद और तर्क आधुनिक मुस्लिम दार्शनिकों का दृष्टिकोण। इस्लामिक रिसर्च सेंटर। लेखिका ने मध्यकालीन दर्शन से समकालीन आलोचनात्मक दृष्टिकोण तक तौहीद के चिंतन क्रम का विश्लेषण किया है।[3]

अजीज, मोहम्मद नसीर (2020), कुरआनी न्याय और आधुनिकता। अरहाम पब्लिकेशन्स। इस शोध–पुस्तक में न्याय के सिद्धांत पर कुरआनिक दृष्टिकोण और इसका सामाजिक प्रभाव मुख्य रूप से प्रस्तुत किया गया है।[4]

मिर्जा, फैज अहमद रहमतुल्लाह (2018) अल्लाह का अनुभव : सूफी चिंतन का स्वरूप। सुफी स्टडीज फाउंडेशन। इस ग्रंथ में सूफी परंपरा के माध्यम से ईश्वर के अनुभूत स्वभाव पर ध्यान केंद्रित किया गया है, और इसे अन्य इस्लामी दृष्टिकोणों के साथ तुलनात्मक रूप से जोड़ा गया है।[5]

अल–गजाली, अबू हामिद (2015) इह्या उलूम अद–दीन (अनुवादित संस्करण)। लिबरी पब्लिकेशन्स। हालाँकि मूल पुस्तक मध्यकालीन काल की है, यह संस्करण आधुनिक समय के संदर्भ में पुनः प्रकाशित होकर दार्शनिक और नैतिक विमर्श में योगदान देता है।[6]

इब्न सीना, अबू अली हुसैन (2013) अश–शिफा (दार्शनिक भाग अनुवादित)। क्लासिकल इस्लामिक स्टडीज। यह कृति दर्शन की दृष्टि से ईश्वर के "अनिवार्य अस्तित्व" पर गहन विश्लेषण प्रस्तुत करती है, जो समकालीन दार्शनिक विमर्श के लिए आधार प्रदान करती है।[7]

उद्देश्य

1. इस्लाम धर्म में ईश्वर (अल्लाह) की अवधारणा का दार्शनिक, धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करना।
2. पवित्र ग्रंथ कुरआन में वर्णित तौहीद (एकेश्वरवाद) के सिद्धांत की व्याख्या करना।
3. पैगंबर मुहम्मद के उपदेशों (हदीस साहित्य) में ईश्वर के स्वरूप एवं गुणों का अध्ययन करना।
4. इस्लामी दार्शनिकों अबू हामिद अल–गजाली, इब्न सीना, तथा इब्न रश्दकृके विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण करना।
5. इस्लाम की ईश्वर–अवधारणा के नैतिक, सामाजिक और समकालीन प्रासंगिक आयामों को स्पष्ट करना।

परिकल्पना

1. इस्लाम धर्म में ईश्वर की अवधारणा पूर्ण एकेश्वरवाद (तौहीद) पर आधारित है, जो किसी भी प्रकार के बहुदेववाद या अवतारवाद को अस्वीकार करती है।
2. इस्लामी ईश्वर–अवधारणा केवल धार्मिक आस्था तक सीमित न होकर सामाजिक न्याय, नैतिकता और उत्तरदायित्व की आधारशिला है।
3. मध्यकालीन इस्लामी दार्शनिकों ने तर्क एवं दर्शन के माध्यम से ईश्वर के अस्तित्व और उसकी अनिवार्यता को प्रमाणित करने का प्रयास किया।
4. समकालीन संदर्भ में इस्लाम की ईश्वर अवधारणा अंतर–धार्मिक संवाद और नैतिक वैश्विक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ईसाई धर्मदर्शन में ईश्वर का प्रेम, कृपा और उद्धार तीन पृथक सिद्धान्त नहीं, बल्कि एक ही दैवीय योजना के परस्पर संबद्ध आयाम हैं। प्रेम ईश्वर के स्वभाव का मूल तत्त्व है, कृपा उसी प्रेम की क्रियाशील अभिव्यक्ति है और उद्धार उस क्रिया का परिणाम, जिसके द्वारा मनुष्य ईश्वर के साथ पुनः संगति में स्थापित होता है। इस त्रयी को समझे बिना ईसाई धर्मशास्त्र की संपूर्णता को ग्रहण करना संभव नहीं।

तुलनात्मक विश्लेषण से यह सामने आया कि विभिन्न युगों और परम्पराओं में इन अवधारणाओं की व्याख्या भिन्न रही है, परन्तु आधारभूत विश्वास में एकता विद्यमान है उद्धार अंततः ईश्वर की पहल है। प्रारम्भिक परंपरा में Augustine of Hippo ने मानव की निर्बलता और दैवी कृपा की अनिवार्यता को रेखांकित किया। मध्ययुग में Thomas Aquinas ने यह दिखाया कि पा मनुष्य को नष्ट नहीं करती, बल्कि उसे पूर्ण बनाती है। सुधार आंदोलन के दौरान Martin Luther ने विश्वास के माध्यम से धर्मी ठहराए जाने पर बल देते हुए यह प्रतिपादित किया कि उद्धार किसी भी मानवीय उपलब्धि का परिणाम नहीं है। आधुनिक चिंतन में Karl Barth ने ईश्वर की संप्रभु स्वतंत्रता और मसीह में प्रकट प्रेम को केंद्र में रखा।

अध्ययन यह भी दर्शाता है कि प्रेम, कृपा और उद्धार की अवधारणाएँ केवल सैद्धान्तिक विमर्श नहीं हैंय उनका गहरा नैतिक और सामाजिक प्रभाव है। यदि ईश्वर प्रेममय है, तो मानव समुदाय को भी क्षमा, करुणा, न्याय और सेवा के मूल्यों को अपनाने के लिए बुलाया जाता है। इस प्रकार उद्धार की अनुभूति व्यक्ति को आंतरिक रूप से परिवर्तित करती है और समाज में मेल–मिलाप तथा मानवीय गरिमा को बढ़ावा देती है।

तुलनात्मक दृष्टि से यह निष्कर्ष निकलता है कि मतभेद मुख्यतः इस प्रश्न पर केन्द्रित हैं कि मानवीय स्वतंत्र इच्छा और कर्म की भूमिका कितनी है, परन्तु सभी परम्पराएँ इस तथ्य को स्वीकार करती हैं

कि पहल ईश्वर की ओर से होती है। मनुष्य उस प्रेम का प्रत्युत्तर विश्वास, आज्ञाकारिता और नैतिक जीवन के माध्यम से देता है।

अंततः कहा जा सकता है कि ईसाई धर्मदर्शन में उद्धार कोई दूरस्थ या केवल परलोकिक प्रतिज्ञा नहीं, बल्कि वर्तमान जीवन में परिवर्तन की शक्ति है। ईश्वर का प्रेम मानव इतिहास में सक्रिय होकर कृपा के माध्यम से नई सृष्टि की संभावना खोलता है। यही आशा इस धर्मदर्शन की आत्मा है और यही इसके सतत प्रासंगिक बने रहने का कारण भी।

सन्दर्भ सूची : –

1. खालिद, अहमद अली, (2023) इस्लामी तौहीद : एक समकालीन विश्लेषण। नई दिल्ली, दारुल इल्म प्रकाशन, पृ0 18
2. इब्न रश्द, अबू अल–वालिद मोहम्मद। (2022) तहाफुत अल–तहाफुत। बेरूत, दारुल अफाक, पृ0 93
3. शेख, समीरा फातिमा (2021), तौहीद और तर्क आधुनिक इस्लामी दार्शनिक विमर्श का अध्ययन। नई दिल्ली, इस्लामिक रिसर्च सेंटर प्रकाशन, पृ0 147
4. अजीज, मोहम्मद नसीर। (2020), कुरआनी न्याय और आधुनिक समाज : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन। लखनऊ, नूर पब्लिकेशन हाउस, पृ0 49
5. मिर्जा, फैज अहमद रहमतुल्लाह (2018) अल्लाह का अनुभव : सूफी चिंतन और इस्लामी अध्यात्म का दार्शनिक अध्ययन। अलीगढ़, सूफी स्टडीज पब्लिकेशन, पृ0 71
6. अल–गजाली, अबू हामिद (2015) इह्या उलूम अद–दीन (हिंदी अनुवाद संस्करण) नई दिल्ली, इस्लामिक बुक सर्विस, पृ0 23
7. अल–गजाली, अबू हामिद (2015) इह्या उलूम अद–दीन (हिंदी अनुवाद संस्करण) नई दिल्ली, इस्लामिक बुक सर्विस, पृ0 36

उच्च माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न समायोजित छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. सुरेन्द्र यादव*

सारांश :

"शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत शोध अध्ययन में उच्च माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न समायोजित विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध में वर्णनात्मक शोध के अन्तर्गत सर्वेक्षण शोध विधि का प्रयोग किया गया। जनसंख्या के रूप में जनपद जालौन के उरई तहसील के कक्षा 11वीं में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को लिया गया तथा न्यादर्श के रूप में 500 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया था। आँकड़ों के संकलन हेतु मानकीकृत उपकरण के रूप में स्कूल छात्रों के लिए समायोजन परीसूची का प्रयोग किया गया। शैक्षिक उपलब्धि ज्ञात करने के लिए विद्यार्थियों के कक्षा 10वीं के वार्षिक परीक्षा प्राप्तांक को आधार माना गया। प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–परीक्षण अनुमानिक जैसी सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया। प्रस्तुत शोध अध्ययन में परिणामस्वरूप उच्च समायोजित विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न समायोजित विद्यार्थियों की तुलना में उच्च स्तर की पायी गयी।"

कुन्जी शब्द– समायोजन, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, जनसंख्या, न्यादर्श, शैक्षिक सम्प्राप्ति।

प्रस्तावना :

मानव जीवन चुनौतियों एवं संघर्षों से परिपूर्ण है। व्यक्ति को सफल जीवन जीने के लिए अपने वातावरण और परिस्थितियों के साथ समायोजन स्थापित करना पड़ता है। व्यक्ति के जीवन में अनेक प्रकार के अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती रहती है जिनका उसे सामना करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलग–अलग क्षमता के अनुसार समायोजन करने का प्रयास करते हैं। कुछ लोग प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने में सफल होते हैं और कुछ लोग हार मानकर अपना मानसिक संतुलन खो देते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति असंतोष या कुण्ठा, मानसिक द्वन्द्व एवं तनाव के शिकार हो जाते है जिसके कारण व्यक्ति का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य भी प्रभावित हो जाता है। निःसंदेह व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए स्वस्थ शरीर के साथ–साथ स्वस्थ मस्तिष्क का होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि मानसिक उलझनों से ग्रस्त व्यक्ति प्रायः अपने दैनिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से उचित समायोजन स्थापित नहीं कर पाता है। संसार में शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से स्वस्थ तथा वातावरण के साथ उचित समायोजन स्थापित करके ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उच्च सफलतायें प्राप्त की जा सकती हैं।

समायोजन का अर्थ–

समायोजन को सामंजस्य, समंजन, व्यवस्थापन तथा अनुकूलन भी कहते हैं। यह शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है– सम + आयोजन।

सम् का अर्थ होता है– भली–भाँति, अच्छी तरह या समान रूप से तथा आयोजन का अर्थ है– व्यवस्था या अच्छी तरह व्यवस्था करना अर्थात् सम्मिलित रूप से समायोजन का अर्थ हुआ सुव्यवस्थित या अच्छे ढ़ंग से परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की प्रक्रिया जिससे व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरी हो जाये और मानसिक द्वन्द्व न उत्पन्न होने पाये।

गेट्स एवं अन्य विद्वानों ने 'समायोजन' शब्द के दो अर्थ बताए हैं–

प्रथम अर्थ में, समायोजन निरन्तर चलने वाली एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति स्वयं और पर्यावरण के बीच अधिक सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धित रखने के लिये अपने व्यवहार में परिवर्तन कर देता है।

दूसरे अर्थ में समायोजन एक संतुलित दशा है जिस पर पहुँचने पर हम उस व्यक्ति को सुसमायोजित कहते हैं ।

स्मिथ (1961) के अनुसार "एक अच्छा समायोजन वह है जो यथार्थपूर्णता के साथ व्यक्ति को संतोष प्रदान करता है। अन्तोगत्वा, वह व्यक्ति की कुण्ठाओं, उसके तनावों एवं चिंताओं जिन्हें उसे सहन करना पड़ता है, न्यूनातिन्यून बना देता है।" स्मिथ आगे लिखते हैं कि व्यक्ति को ठीक रूप से संतोष मिलना ही

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एम0एड0 विभाग), दयानन्द वैदिक कॉलेज उरई (जालौन) Email : ssydvcmed@gmail.com

समायोजन का आवश्यक लक्षण होता है। यदि व्यक्ति अपनी परिस्थिति से संतुष्ट नहीं है या वह अपने को भीतर से आन्दोलित महसूस करता है तो उसे हम समायोजन नहीं कह सकते हैं।

कोलमैन (1969) के मतानुसार ''समायोजन अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने तथा खिंचावों से निपटने के लिए व्यक्ति द्वारा किए गए प्रयासों का परिणाम है।''

वोनहेलर (1970) के शब्दों में ''हम समायोजन शब्द को अपने आप को जीवित रखने के लिए वैसे ही प्रयोग में ला सकते हैं जैसे जीवशास्त्री अनुकूलन शब्द का प्रयोग किसी जीव को शारीरिक या भौतिक दृष्टि से जीवित रहने के लिए करते हैं।'' उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि एक सुसमायोजित व्यक्ति स्वयं में एक एकीकृत व्यक्तित्व का विकास करके अपनी परिस्थितियों के अनुरूप अपने व्यवहार को करते हुए सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है।

शैक्षिक उपलब्धि :

शैक्षिक उपलब्धि से आशय बालक के व्यवहार के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों में दिखाई देने वाले परिवर्तनों से है। यह विद्यार्थियों द्वारा अर्जित ज्ञान, बोध, कौशल एवं अनुप्रयोग आदि योग्यताओं की मात्रात्मक अभिव्यक्ति से है। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया द्वारा विद्यार्थी अपनी विभिन्न योग्यताओं का विकास करते हैं। विद्यार्थियों ने किस सीमा तक अपनी बौद्धिक योग्यताओं का विकास किया है। यहीं उसकी शैक्षिक उपलब्धि का सूचक कहलाता है। **स्टेंगर (1962) के शब्दों में** ''विद्यालयी विषयों की निपुणता में विद्यार्थियों द्वारा की गयी प्रवीणता या प्रगति की डिग्री'' ही शैक्षिक उपलब्धि है। वेबस्टर ने उपलब्धि को इस प्रकार परिभाषित किया है कि ''यह छात्रों के कार्य की गुणात्मक और संख्यात्मक/मात्रात्मक अभिव्यक्ति है।'' **सिंह (1976)** ने इंगित किया कि ''शैक्षिक उपलब्धि एक जटिल चर है, जो विभिन्न प्रकार के बौद्धिक और गैर बौद्धिक के विभिन्न कारकों के परिणामस्वरूप विभिन्न तरीकों से इसे प्रभावित करती रही है। ऐसे कई कारक हैं, जिनमें बुद्धि, आत्मसम्प्रत्यय अध्ययन आदत, लचीलापन, आत्मप्रभाविकता, शैक्षिक चिंता, तनाव, विद्यालय और गृह वातावरण, सहकर्मी प्रभाव एवं शिक्षकों की शिक्षा आदि कारक शैक्षिक सम्प्राप्ति को प्रभावित करते हैं।'' शैक्षणिक व्यवस्था के सबसे महत्वपूर्ण परिणामों में से एक छात्रों की शैक्षिक सम्प्राप्ति है। इसे कुछ क्षमताओं एवं कौशलों को विकसित करने के लिए निर्णायक माना जाता है। दुनिया भर में व्यवस्थापक, शिक्षक, माता–पिता, छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने के लिए सबसे अधिक महत्व देते हैं।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन :

प्रस्तुत शोध कार्य के संदर्भ में अब तक जो अध्ययन हुए हैं उनसे प्राप्त निष्कर्ष इस प्रकार हैं–

लाला (2002) ने अपने अध्ययन में पाया कि सामान्य एवं अनाथ विद्यार्थियों के समायोजन (उच्च एवं निम्न) तथा शैक्षिक उपलब्धि (उच्च एवं निम्न) में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सिंह, कल्पना (2005) ने अपने अध्ययन में निष्कर्ष पाया कि उच्च समायोजित विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न समायोजित विद्यार्थियों की तुलना में उच्च होती है।

सिंह, रणविजय (2009) ने अपने अध्ययन में पाया कि माध्यमिक स्तर पर उच्च एवं निम्न समायोजित विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति के बीच सार्थक अन्तर होता है।

संगीता एवं चिरांग (2012) ने अपने अध्ययन में पाया कि जिन कॉलेज छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि उच्च होती है उनके पास कम समायोजन समस्याएँ होती हैं, तथा जिन कॉलेज छात्रों की शैक्षिक सम्प्राप्ति निम्न होती है वे विद्यार्थी अधिक समायोजन समस्याओं से परेशान रहते हैं।

अख्तर एवं आलम (2016) ने अपने अध्ययन में पाया कि उच्च सम्प्राप्ति और निम्न सम्प्राप्ति छात्रों के समग्र समायोजन सार्थक रूप से भिन्न है और साथ ही साथ यह भी पाया कि उच्च शैक्षिक सम्प्राप्ति समूहों के विद्यार्थी निम्न शैक्षिक सम्प्राप्ति समूहों की तुलना में अधिक समायोजित होते हैं।

श्रीवास्तव एवं सिंह (2017) ने अपने अध्ययन में निष्कर्ष पाया कि बंगाली और अंग्रेजी माध्यम के छात्रों का उनके समायोजन की समस्याओं में सार्थक अन्तर है तथा अध्ययन में यह भी पाया कि उच्च और निम्न शैक्षिक सम्प्राप्ति में उनके समायोजन समस्याओं में भी सार्थक अन्तर होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययन की समीक्षा से स्पष्ट होता है कि अब तक जो भी अध्ययन हुए हैं उनमें उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् उच्च एवं निम्न समायोजित विद्यार्थियों के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक उपलब्धि पर कोई अन्तर नहीं पाया गया। इसी क्रम में शोधकर्ता ने प्रस्तुत शोध समस्या के चयन का निर्णय लिया।

शोध समस्या कथन :

''उच्च माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न समायोजित छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन''।

शोध अध्ययन का उद्‌देश्य :

इस अध्ययन का प्रमुख उद्‌देश्य उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् उच्च एवं निम्न समायोजित विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पना :

अध्ययन के उद्‌देश्य के आधार पर शून्य परिकल्पना का निर्माण किया गया, उच्च माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न समायोजित छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध अध्ययन विधि :

प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति को देखते हुए विवरणात्मक शोध के अन्तर्गत 'सर्वेक्षण विधि' को अपनाया गया।

शोध अध्ययन की जनसंख्या :

प्रस्तुत शोध अध्ययन में उत्तर प्रदेश के जालौन जनपद के उरई तहसील में अवस्थित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् कक्षा 11वीं के विद्यार्थियों से है जो यू0पी0 बोर्ड इलाहाबाद से मान्यता प्राप्त है, को शोध कार्य की जनसंख्या माना गया।

न्यादर्श एवं न्यादर्शन विधि :

प्रस्तुत अध्ययन में जनसंख्या से न्यादर्श के रूप में 500 विद्यार्थियों का चयन 'यादृच्छिक न्यादर्श चयन विधि' द्वारा किया गया। इसमें सर्वप्रथम यू0पी0 बोर्ड इलाहाबाद से मान्यता प्राप्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की सूची तैयार की गयी। तत्पश्चात लॉटरी विधि द्वारा जालौन जिले के उरई तहसील में अवस्थित 12 विद्यालयों का चयन किया गया। उसके उपरान्त प्रत्येक विद्यालय की कक्ष 11वीं के विभिन्न खण्डों में से 'गुच्छ न्यादर्श चयन विधि' द्वारा किसी एक खण्ड का चयन करके उनमें सम्मिलित सभी विद्यार्थियों को न्यादर्श की इकाईयों के रूप में सम्मलित किया गया।

शोध उपकरण :

प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के संकलन के लिए **डॉ0 ए0के0पी0 सिंह** द्वारा निर्मित विद्यालय विद्यार्थियों के लिए समायोजन परिसूची' का प्रयोग किया गया। इस सूची में समायोजन के तीन आयामों को सम्मिलित किया गया है, जिनमें संवेगात्मक, सामाजिक एवं शैक्षिक समायोजन। इस सूची में विद्यालय के विद्यार्थियों की समस्याओं से सम्बन्धित 60 पदों को रखा गया है, जिसमें 20 पद संवेगात्मक क्षेत्र से, 20 पद सामाजिक क्षेत्र से तथा 20 पद शैक्षिक क्षेत्र से जुड़े हुए हैं। प्रत्येक कथन में उत्तर देने के लिए तीन विकल्प हैं– सदैव, कभी–कभी तथा कभी नहीं।

परीक्षण की विश्वसनीयता गुणांक के लिए तीन विधियों का प्रयोग किया गया था। जिनमें (1) अर्द्धविच्छेदन विश्वसनीयता गुणांक 0.94, परीक्षण पुर्नपरीक्षण विश्वसनीयता गुणांक 0.93 तथा K-12 सूत्र 20 विश्वसनीयता गुणांक 0.93 तक प्राप्त किया गया था। यह विश्लेषण में वैधता गुणांक के लिए प्रत्येक पदों का निर्धारण बाईसीरियल सहसम्बन्ध विधि के द्वारा निर्मित किया गया था।

अंकन हेतु यह सूची पहले दो बिन्दु मापनी पर आधारित थी जिसमें 'हाँ' और 'नहीं' के रूप में विकल्प दिए गए थे। वर्तमान में यह सूची तीन बिन्दु मापनी पर आधारित है, यथा– (1) सदैव (2) कभी–कभी तथा (3) कभी नहीं।

मापनी की अंकन प्रणाली

Sl. No.	पदों के प्रकार	सदैव	कभी–कभी	कभी नहीं
1.	Marked Always	2	1	0
2.	Marked Never	0	1	2

नोट– कम स्कोर, बेहतर समायोजन का स्तर निर्धारित किया गया।

शैक्षिक उपलब्धि :

शैक्षिक उपलब्धि से आशय विद्यार्थियों द्वारा पूरे सत्र के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम से प्राप्त की गयी उपलब्धि से है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए आधार के रूप में कक्षा 10वीं में अर्जित कुल वार्षिक परीक्षा प्राप्तांक ही विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या :

प्रस्तुत शोध अध्ययन के अन्तर्गत एकत्र किये गये आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करते हुए शोध परिणामों की व्याख्या की गयी।

प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य था कि ''उच्च माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न समायोजित छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन'' जिसकी प्राप्ति के लिए शून्य परिकल्पना ''उच्च माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न समायोजित छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'' का परीक्षण किया गया है, जिसकी विश्लेषण तालिका निम्नलिखित है–

उच्च तथा निम्न समायोजित छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि सम्बन्धी सी0आर0 मूल्य विश्लेषण तालिका

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	सी0आर0 त्रुटि	सार्थकता स्तर
उच्च समायोजित विद्यार्थी	135	425.85	47.69	5.95	4.48	.01 df (268) 2.59
निम्न समायोजित विद्यार्थी	135	399.19	50.18			

उपर्युक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि उच्च समायोजित विद्यार्थियों की शैक्षिक सम्प्राप्ति पर मध्यमान तथा मानक विचलन क्रमशः 425.85 तथा 47.69 पाया जबकि निम्न समायोजित विद्यार्थियों के मध्यमान व मानक विचलन क्रमशः 399.19 व 50.18 पाया गया है।

तालिका से स्पष्ट है कि आंकलित मानक त्रुटि 5.95 और सी0आर0 मूल्य 4.48 है जो df (268) के 0.01 सार्थकता स्तर के मूल्य 2.59 से अधिक है। इससे स्पष्ट है कि शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। अतः सार्थकता स्तर के आधार पर कहा जा सकता है, कि उच्च समायोजित छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि निम्न समायोजित विद्यार्थियों की तुलना में उच्च स्तर की है। प्रस्तुत शोध अध्ययन का समर्थन लाल (2002), सिंह कल्पना (2005), सिंह, रणविजय (2009), संगीता एवं चिराग (2012), अख्तर एवं आलम (2016) का अध्ययन करता है।

परिणाम–

प्रस्तुत शोध अध्ययन के परिणाम के कारण सम्भवतः उत्तर प्रदेश के जनपद जालौन से लिये गये आँकड़े जिसमें सामाजिक, सांवेगिक तथा शैक्षिक आयामों का सम्यक् समायोजन मध्यवर्गीय परिवार में मिलता है। जहाँ विद्यार्थियों को उनके माता–पिता द्वारा अध्ययन हेतु पुस्तकें इत्यादि साधन की व्यवस्था की जाती है जबकि ऐसे परिवार जो आर्थिक रूप से पिछड़े होते हैं उनमें समाजिक, सांवेगिक तथा शैक्षिक आयामों का सम्यक् समायोजन की कमी होती है जिससे इनकी शैक्षिक उपलब्धि प्रभावित होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, एस0पी0 (2014); उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान : सिद्धान्त एवं व्यवहार इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
2. लाल, अनोखे (2002); सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में अनाथ विद्यार्थियों के समायोजन का उनकी शैक्षिक उपलब्धि के सम्बन्ध में एक अध्ययन, अप्रकाशित लघु शोध–प्रबन्ध (शिक्षा–संकाय), जौनपुर : राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिंगरामऊ।
3. मंगल, एस0के0 (2008); शिक्षा–मनोविज्ञान, नई दिल्ली : प्रेंटिस हॉल ऑफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड।
4. पाण्डेय, के0पी0 (2009); नवीन शिक्षा मनोविज्ञान, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
5. सारस्वत, मालती एवं कुमार, कुमुद (2003); शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, इलाहाबाद, आलोक प्रकाशन।
6. सिंह, कल्पना (2005); वाराणसी मण्डल के माध्यमिक स्तर के अनुसूचित जाति, पिछड़ी जाति एवं सामान्य जाति के विद्यार्थियों के मूल्य एवं समायोजन का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन, अप्रकाशित शोध–प्रबन्ध, जौनपुर : पूर्वांचल विश्वविद्यालय।
7. सिंह, रणविजय (2009); माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की सृजनशीता,त्र समायोजन–क्ष्ज्ञमता तथा अध्ययन आदत का शैक्षिक निष्पत्ति से सम्बन्ध, अप्रकाशित शोध–प्रबन्ध(शिक्षक–प्रशिक्षण विभाग),जौनपुरःटी0डी0पी0जी0 कॉलेज।

- कपिल, एच0के0 (1981); अनुसंधान विधियाँ, आगरा, हरिप्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशन।
- गुप्ता, एस0पी0 (2007); उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, नवीन संस्करण।
- बुच, एम0बी0 (1972); सेकेण्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशन, सोसाइटी फार एजूकेशनल रिसर्च एण्ड डेवलपमेन्ट, बरौदा, भारत।
- Shodganga.inflibnet.ac.in
- https://ndl.itlkjp.ac.in

ᘓᘍ

महिला सशक्तिकरण एवं राष्ट्रनिर्माण का सामाजिक अध्ययन

डॉ. सुरेन्द्र कुमार यादव*

सारांश

प्राचीन भारत में महिलाओं की समाज में एक विशिष्ट स्थिति रही है। वेदों में महिलाओं को पुरूष के समान माना गया गया बल्कि उसे प्रकृति भी कहा गया है अर्थात वह जीवन का मूल तत्व है। उसे देवी, मातृशक्ति, गृह लक्ष्मी इत्यादि शब्दों से निरूपित किया गया है। अरुंधति राय सुलभा, मैत्री, गार्गी भारती जैसी अनेक विदुषी नारियां कहीं पर भी उस समय के ऋषि–मुनियों से कम नहीं थी वीरांगना नारियों की भारतीय इतिहास में न जाने कितनी गाथाएं प्रेरणा उसे भरी हुई हैं। मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति परिवर्तित हुई पर्दा प्रथा एवं बाल विवाह के प्रचलन के कारण अत्यंत कम लड़कियां बचपन में शिक्षा प्राप्त करती थी परंतु राजा सामंतों तथा शाही घरानों, अमीर परिवारों की लड़कियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था उस समय भी उपलब्ध थी। यही कारण है कि इतिहास में गुलबदन बेगम शालीमा मुल्ताना नूरजहां, जहांआरा जेबुन्निसा आदि महिलाओं ने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी वहीं रजिया सुल्ताना ने देश का नेतृत्व किया। महिलाओं की सामाजिक स्थिति में अन्तर के बावजूद भारत में जीवन के लगभग हर क्षेत्र में महिलाओं की सफलता और उनका योगदान पुरुषों से कहीं भी कम प्रतीत नहीं होता। कालांतर में भारत में जन्म से लेकर मृत्यु तक महिलाएं भेदभाव का सामना करती रही है शिक्षा, स्वास्थ्य, लिंगानुपात, आर्थिक भागीदारी आदि अनेक प्रमुख संकेतक देश में पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की स्थिति में विद्यमान असंतुलन की ओर इशारा करते हैं।

राष्ट्रनिर्माण और महिलाओं का योगदान एक दूसरे के पूरक हैं जो एक–दूसरे के बगैर अधूरे प्रतीत होते हैं। राष्ट्रनिर्माण एक वृहद अवधारणा है जिसकी प्रक्रिया विचारों के जन्म के साथ ही प्रारंभ हो जाती है यह प्रक्रिया प्रत्येक देश काल में अनवरत जारी रहती है। इस प्रक्रिया में जितना पुरूष की सांस्कृतिक सभ्यता का योगदान है उतना ही योगदान महिलाओं का भी है। प्राचीन भारतीय सभ्यता से लेकर वर्तमान तक महिलाओं का राष्ट्रनिर्माण में योगदान अनुकरणीय है, परन्तु यह बात भी सत्य है कि कालान्तर में महिलओं की स्थिति निम्न हुई जिसे सशक्तिकरण के माध्यम से उपर उठाने के विभिन्न प्रयास किये जा रहै है, यह शोध का विषय है।

आधुनिक समाज में महिला सशक्तिकरण का मुद्दा एक ज्वलंत मुद्दा है। स्वतंत्रता के बाद, भारत में महिलाओं ने राजनीति, शिक्षा, सामाजिक सुधार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, व्यवसाय, कला और संस्कृति और जमीनी स्तर पर सक्रियता सहित विभिन्न क्षेत्रों में देश के विकास में महत्वपूर्ण और बहुमुखी भूमिका निभाई है। राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में महिलाओं का वर्तमान योगदान लगभग 18% है। भारत में कृषि कार्यबल में 48% महिलाएँ शामिल हैं और उनके पास केवल 13% भूमि है। भारत में महिलाएँ विनिर्माण कार्यबल का लगभग 20% और सेवा क्षेत्र में कुल कार्यबल का लगभग 30% हैं। वर्तमान में, भारत में कामकाजी उम्र की 432 मिलियन महिलाएं हैं, जिनमें से 343 मिलियन असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं। स्टार्टअप के मामले में भारत दुनिया में तीसरा सबसे बड़ा इकोसिस्टम है और उनमें से 10: का नेतृत्व महिला संस्थापकों ने किया है। इसके अलावा, शोध से पता चलता है कि महिलाओं द्वारा शुरू किए गए उद्यम प्रकृति में अधिक टिकाऊ होते हैं। 2022 में, 250 भारतीय कंपनियों के बीच एक सर्वेक्षण से पता चला कि मुख्य कार्यकारी अधिकारी या प्रबंध निदेशक की भूमिकाओं में महिलाओं की हिस्सेदारी 55% बढ़ गई है, जो अर्थव्यवस्था को चलाने में उनकी भूमिका में महत्वपूर्ण वृद्धि को दर्शाता है। ऐसे अनेकों अनेक योगदान जो महिलाओं की कीर्ति गाथा प्रस्तुत करते हैं, जिस पर अध्ययन किया जाना जरूरी है ताकि महिलाओं की सामाजिक स्थिति में विद्यमान असंतुलन समाप्त हो सके।"[1]

मुख्य शब्द :– राष्ट्रनिर्माण, महिला, योगदान, सशक्तिकरण, सामाजिक

* समाजशास्त्र विभाग (गेस्ट प्रोफेसर समाजशास्त्र), शा. राजमोहिनी देवी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय अम्बिकापुर सरगुजा (छ.ग.) Email id-ysurendra53@gmail.com, Mo No-8808694208

राष्ट्रनिर्माण :

राष्ट्र निर्माण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक राष्ट्र प्रभावी और सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक स्वशासन तथा स्वनिर्धारित और सतत सामुदायिक विकास के लिए अपनी क्षमता को मजबूत करता है। राष्ट्र निर्माण में स्वशासन की ऐसी संस्थाओं का निर्माण करना शामिल है जो राष्ट्र के लिए सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त हों और जो राष्ट्र की चुनौतियों का समाधान करने में प्रभावी हों। इसमें राष्ट्र की अपने मामलों के बारे में समय पर, रणनीतिक रूप से सूचित निर्णय लेने और उन निर्णयों को लागू करने की क्षमता विकसित करना शामिल है। इसमें काम करने वाले समाजों के पुनर्निर्माण के लिए एक व्यापक प्रयास शामिल है। महिलाओं के संदर्भ में राष्ट्र निर्माण दृष्टिकोण यह समझता है कि महिलायें केवल हित समूह नहीं हैं, बल्कि मानव सभ्यता के विकास में महती भूमिका का निर्वहन कर राष्ट्रों को संचालित करती हैं।

महिलाओं का सामाजिक योगदान :

स्वामी विवेकानंद का ये कथन कि "मुझे 500 पुरूष दे दो तो मैं राष्ट्र को एक वर्ष में बदल दूंगा लेकिन यदि मुझे 50 महिलायें देदो तो मैं कुछ ही महीनों में देश को बदल दूंगा।"[2] महिलाओं की शक्ति और क्षमता का चित्रण प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो वैदिक काल में स्त्रियां बुद्धि व शिक्षा में अग्रणी थी। यजुर्वेद के अनुसार इस काल में कन्या का उपनयन संस्कार होता था। उसे सन्ध्या करने का अधिकार था। रामायण में विवरण है कि सीता नियमित रूप से संध्या पाठ करती थी। जिसे डॉ. अल्तेकर ने पोजिशन ऑफ वूमन इन हिन्दू सिविलाइजेशन पृष्ठ सं. 11 में वैदिक मंत्रों का पाठ माना है। वे तर्क शास्त्र व वाद–विवादों में पारंगत थी। इस काल में सुलभा, गार्गी, मैत्रयी आदि के नाम अविस्मरणीय हैं। इस काल में स्त्रियों का सामाजिक धार्मिक व राजनीति आदि क्षेत्रों पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त थे।[1] उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थितियों में परिवर्तन आया फिर भी कुछ पदों पर स्त्रियों के पदासी होने के संकेत हैं स्त्रियों का शिक्षक होना एवं नृत्य चित्रकला एवं संगीत की शिक्षा प्राप्त करने का उल्लेख महत्वपूर्ण है।"

प्राचीन भारत में महिलाओं का आर्थिक योगदान भी उल्लेखनीय है। गृहकार्यों से लेकर कृषि, प्रशासन एवं यज्ञा कर्म से लेकर अध्यात्म साधना तक के क्षेत्र उनके विशिष्ट व्यक्तित्व प्रतिभा एवं कौशल की भूमिका महत्वपूर्ण है। तत्कालीन महिलाओं में गणिकायें व देवदासियों के रूप में भी समाज में योगदान दिया ये महिलायें संगीत, नृत्य, श्रृंगार गायन आदि में कुशल होने के कारण आर्थिकोपार्जन तो करती ही थी बल्कि राज्यों में युद्ध के खूफिया तंत्र के रूप में भी नियुक्ति प्राप्त कर राज्यों को सहयोग प्रदान करती थी।

मध्यकालीन भारत में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में बहुत अच्छी नहीं थी बावजूद इसके मध्यकाल का इतिहास महिलाओं की साहसिक गाथा को बयान करता है। रानी लक्ष्मीबाई, चाँद बीबी, रजिया सुल्ताना का नाम उल्लेखनीय है इसके अलावा रानी रुद्रम्मा, अहिल्या बाई, रानी अवंतीबाई का शासन काल भी बहुत प्रसिद्ध और साहसी था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत की महिलाएँ किसी भी काल या युग में बहुत साहसी और प्रेरणादायक थीं।

रानी दुर्गावती अपने पति दलपत शाह की मृत्यु के बाद गोंडवाना की शासक थीं। उन्होंने मुगल सम्राट अकबर के खिलाफ बहादुरी से लड़ाई लड़ी। रानी दुर्गावती ने सेना के विरुद्ध युद्ध लड़ा लेकिन, दुर्भाग्य से वह हार गयी। जब उसे युद्ध का मैदान छोड़ने के लिए कहा गया तो उसने इनकार कर दिया और बेइज्जती के लिए मौत को चुनते हुए खंजर से खुद को बलिदान कर दिया।

नूरजहाँ मुग़ल बादशाह जहाँगीर की पत्नी थी। इसे मेहरून्निशा के नाम से भी जाना जाता है। जहाँगीर से विवाह के बाद वह शक्ति के साथ उभरीं। वह मजबूत, करिश्माई, योग्य, बहादुर, निर्भीक, शिक्षित महिला थीं। जिस समय मुग़ल साम्राज्य अपनी शक्ति और वैभव के चरम पर था, नूरजहाँ सबसे शक्तिशाली और प्रभावशाली महिला थी। वह 1611–1627 तक सिंहासन के पीछे मुख्य शक्ति थी। इतिहासकारों का दावा है कि नूरजहाँ ने अपने पिता गियास बेग, भाई आसफ़ खान के साथ मिलकर एक मंडल बनाया जो इस स्थिति तक पहुँच गया कि साम्राज्य के सभी महत्वपूर्ण मामलों का नियंत्रण उनके हाथों में चला गया। इस सर्कल को नूरजहाँ जुंटा कहा जाता था।

आधुनिक भारतीय समाज में महिलाओं का योगदान अतुलनीय और गहरा है। राजनीति से लेकर शिक्षा तक, व्यवसाय से लेकर सामाजिक सेवाओं तक, कला और संस्कृति से लेकर खेल तक, एयरोस्पेस से लेकर पत्रकारिता और मीडिया तक, विज्ञान और प्रौद्योगिकी से लेकर साहित्य तक, मनोरंजन से लेकर परोपकार तक, आध्यात्मिक और धार्मिक नेतृत्व, उद्यमिता, सामाजिक सक्रियता और पर्यावरण संरक्षण तक,

महिलाएं हर क्षेत्र में प्रभाव डाल रही हैं। उनकी कड़ी मेहनत और दृढ़ संकल्प उनकी उल्लेखनीय ताकत और लचीलेपन का प्रमाण है।

भारतीय इतिहास महिलाओं की उपलब्धि से भरा पड़ा है। आनंदीबाई गोपालराव जोशी (1865–1887) पहली भारतीय महिला चिकित्सक थीं और संयुक्त राज्य अमेरिका में पश्चिमी चिकित्सा में दो साल की डिग्री के साथ स्नातक होने वाली पहली महिला चिकित्सक रही है। सरोजिनी नायडू ने साहित्य जगत में अपनी छाप छोड़ी। हरियाणा की संतोष यादव ने दो बार माउंट एवरेस्ट फतेह किया। बॉक्सर एमसी मैरी कॉम एक जाना–पहचाना नाम है। हाल के वर्षों में, हमने कई महिलाओं को भारत में शीर्ष पदों पर और बड़े संस्थानों का प्रबंधन करते हुए भी देखा है – अरुंधति भट्टाचार्य, एसबीआई की पहली महिला अध्यक्ष, अलका मित्तल, ओएनजीसी की पहली महिला सीएमडी, सोमा मंडल, सेल अध्यक्ष, कुछ ओर नामचीन महिलाएं हैं, जिन्होनें विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया है।

कोविड–19 के दौरान कोरोना योद्धाओं के रूप में महिलाओं डाक्टरों, नर्सो, आशा वर्करों, आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं व समाजिक कार्यकर्ताओं ने अपनी जान की प्रवाह न करते हुए मरीजों को सेवाएं दी है। कोरोना के खिलाफ टीकाकरण अभियान को सफल बनाने में अहम भूमिका निभाई। भारत बायोटेक की संयुक्त एमडी सुचित्रा एला को स्वदेशी कोविड –19 वैक्सीन कोवैक्सिन विकसित करने में उनकी शानदार भूमिका के लिए पद्म भूषण से सम्मानित किया गया है। महिमा दतला, एमडी, बायोलॉजिकल ई, ने 12–18 वर्ष की आयु के लोगों को दी जाने वाली कोविड–19 वैक्सीन विकसित करने के लिए अपनी टीम का नेतृत्व किया। निस्संदेह, महिलाएं और लड़कियां समाज में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बदलाव की अग्रदूत हैं।

छठी आर्थिक गणना के अनुसार, हमारे पास देश में 8.05 मिलियन महिला उद्यमी हैं। शॉपक्लूज, घर और रसोई, दैनिक उपयोगिता वस्तुओं की मार्केटिंग के लिए 2011 में राधिका ऑनलाई स्टार्ट–अप शुरू किया गया। यह यूनिकॉर्न क्लब में प्रवेश करने वाली पहली भारतीय महिला उद्यमी थीं। राजोशी घोष के हसुरा, स्मिता देवराह के लीड स्कूल, दिव्या गोकुलनाथ के बायजू और राधिका घई के 'शॉपक्लूज' अन्य यूनिकॉर्न हैं, जो महिला स्टार्टअप की क्षमता के बारे में बहुत कुछ बयां करते है।

महिला सशक्तिकरण की स्थिति

महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य महिलाओं के व्यक्तियों और समुदायों की आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक, लिंग या आर्थिक शक्ति को बढ़ाना है। महिलाएं हर अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न अंग हैं। किसी राष्ट्र का सर्वांगीण विकास और सामंजस्यपूर्ण विकास तभी संभव होगा जब महिलाओं को पुरुषों के साथ प्रगति में समान भागीदार माना जाएगा।

आर्थिक क्षेत्र – भारतीय अर्थव्यवस्था तेजी से विकास की राह पर है, लेकिन इसके कार्यबल की रूपरेखा आश्चर्यजनक असमानताओं को दर्शाती है। 2004–05 और 2019–20 के बीच, शहरी भारत में महिला कार्यबल भागीदारी दर (FWFPR) 16.6ः से बढ़कर 16.8% हो गई, जबकि ग्रामीण भारत में यह 32.7% से घटकर 24% हो गई।[6] भारत में लगभग 104 मिलियन उद्यमी या देश की वयस्क आबादी का लगभग 11.5% हैं।[7] बेन एंड कंपनी के अनुसार, भारत में लगभग 15.7 मिलियन महिला–संचालित उद्यम हैं, जो समग्र उद्यमशीलता परिदृ श्य का 22 प्रतिशत है, यह आंकड़ा आगे समर्थन और प्रोत्साहन के साथ 30 मिलियन तक बढ़ने की क्षमता रखता है।

राजनैतिक क्षेत्र – 1952 में निचले सदन में महिलाओं की संख्या केवल 4.41% थी।

भारत ने इस वर्ष लोकसभा के लिए 74 महिला सांसद चुनी हैं, जो 2019 की तुलना में चार कम और 1952 में भारत के पहले चुनावों की तुलना में 52 अधिक हैं।

ये 74 महिलाएं निचले सदन की निर्वाचित ताकत का सिर्फ 13.63% हैं, जो अगले परिसीमन अभ्यास के बाद महिलाओं के लिए आरक्षित 33% से बहुत कम है।

संसद के निचले सदन में सेवा देने वाली महिलाओं के प्रतिशत के मामले में भारत 193 देशों में से 149वें स्थान पर था।

शैक्षणिक क्षेत्र – 2010–2021 के बीच भारत में महिला साक्षरता दर 14.4% बढ़ी है। 2021 में यह दर 91. 95% थी. साल–दर–साल के आधार पर, 2021 में साक्षरता दर में 0.6% की वृद्धि हुई।

महिला भारतीय वाणिज्य एवं उद्योग मंडल (WICCI) ने महिला सशक्तिकरण का जश्न मनाने के लिए चंडीगढ़ में वसंत उत्सव सेमिनार का आयोजन किया। WICCI का उद्देश्य महिला उद्यमिता का निर्माण और उसे बढ़ावा देना है।

भारत वर्ष 2023 में जी–20 शिखर सम्मेलन की मेज़बानी कर रहा है और महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण भारत के जी–20 एजेंडे का मुख्य केंद्र है। प्रधानमंत्री ने 2022 में बाली में जी–20 शिखर सम्मेलन में कहा था कि "महिलाओं की भागीदारी के बिना वैश्विक विकास संभव नहीं है।"

महिला सशक्तिकरण के उपाय

संवैधानिक प्रावधान : भारत में संविधान द्वारा प्रदत कुछ प्रमुख अधिकार महिलओं को संरक्षण प्रदान करने के साथ ही सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है जिनमें से प्रमुख रूप से सती प्रथा निषेध अधिनियम 1829, हिंदू विधवा पुनर्विवाह 1856, बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929 अलग रहने एवं भरण पोषण हिंदू विवाहित स्त्रियों का अधिकार अधिनियम 1946, हिंदू विवाह अधिनियम 1955, अस्पृश्यता 1955, दहेज निपेध अधिनियम 1961 मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम 1939, प्रसूति सुविधा अधिनियम 1961, समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 श्री अशिष्ट विरूपण अधिनियम 1986, भारतीय तलाक संशोधन अधिनियम 2001, महिलाओं पर घरेलू हिंसा अधिनियम 2001, बालिका अनिवार्य शिक्षा एवं कल्याण अधिनियम 2001, घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम 2005, के पर यौन शोषण निषेध और निवारण अधिनियम 2013 इत्यादि प्रमुख महिला सशक्त कानून है।

शासकीय योजनाएं : भारत सरकार ने विभिन्न गरीबी उन्मूलन और ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को लागू किया। इन कार्यक्रमों में महिला सशक्तिकरण के लिए विशेष घटक हैं। वर्तमान में, भारत सरकार के पास विभिन्न विभागों और मंत्रालयों द्वारा संचालित महिलाओं के लिए 37 से अधिक योजनाएं हैं। इन कार्यक्रमों/योजनाओं के कार्यान्वयन की विशेष रूप से महिलाओं की कवरेज के संदर्भ में निगरानी की जाती है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैंः– 1. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा)। 2. लगभग 9000 गाँवों में महिला समाख्या क्रियान्वित की जा रही है। 3. (आजीविका) और इंदिरा आवास योजना (IAY)। 4. जेंडर बजटिंग योजना (ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना)। 5. सिडबी की महिला उद्यम निधि महिला विकास निधि। 6. एनजीओ की क्रेडिट योजनाएं। 7. कामकाजी और बीमार मां के बच्चों के लिए क्रेच/डे केयर सेंटर। 8. राष्ट्रीय महिला अधिकारिता मिशन। 9. राष्ट्रीय महिला कोष (आर.एम.के.) 1992–1993। 10. किशोर लड़कियों के सशक्तिकरण के लिए राजीव गांधी योजना (आर.जी.एस.ई.ए.जी.) (2010)। 11. स्वालम्बन। 12. महिलाओं के लिए प्रशिक्षण और रोजगार कार्यक्रम (STEP) के लिए सहायता। 13. एकीकृत बाल संरक्षण योजना (आई.सी.पी.एस.) (2009–2010)। 14. स्वाधार। 15. स्वयंसिद्धा। 16. कृषि और ग्रामीण विकास योजनाओं के लिए राष्ट्रीय बैंक। 17. खादी और ग्रामोद्योग आयोग। 18. कामकाजी महिलाओं के लिए छात्रावास। 19. उज्जवला (2007)। 20. कामकाजी महिला मंच 21. महिला समृद्धि योजना (MSY) अक्टूबर, 1993। 22. एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.)। 23. स्वं शक्ति समूह। 24. कामकाजी माताओं के बच्चों के लिए राजीव गांधी राष्ट्रीय क्रेच योजना। 25. शॉर्ट स्टे होम्स। 26. महिला विकास निगम योजना (डब्ल्यू.डी.सी.एस.)। 27. इंदिरा महिला योजना 28. धनलक्ष्मी (2008)। 29. महिला उद्यमी विकास कार्यक्रम को 1997–98 में सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। 30. महिला समिति योजना। 31. एसबीआई की श्री सखी योजना। 32. इंदिरा महिला केंद्र। 33. स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं का प्रशिक्षण (TRYSEM)। 34. इंदिरा प्रियदर्शिनी योजना। 35. प्रधानमंत्री रोजगार योजना (पी.एम.आर.वाई)। 36. बेटी पढ़ाओ बेटी बचाओ योजना। 37. महतारी वंदन योजना।

निष्कर्ष :

निश्चित ही राष्ट्रनिर्माण में महिलाओं का योगदान अतुलनीय है प्राचीन भारत से लेकर आधुनिक और उत्तर–आधुनिक भारत तक महिलाओं की सामाजिक स्थिति में काफी उतार–चढ़ाव होते हुए भी महिलाओं ने अपनी साहसिक और कुशलता की छाप छोड़ी है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि महिलाओं को हाशिए पर रखकर आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विकास संभव नहीं, महिलाओं को राष्ट्र के विकास की मुख्यधारा से जोड़े बिना किसी समाज राज्य एवं देश के संपूर्ण विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अब वह दिन लग गए हैं जब दिनकर जी ने लिखा जहां नारी को कहा जाता था "नारी जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आंचल में दूध और आंखों में पानी" महिलाएं आत्मनिर्भर हाने को प्रयासरत् हैं। शासन द्वारा महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन से निश्चित ही महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आया है।

सन्दर्भ :

1. https://vajiramandravi.com/quest-upsc-notes/role-of-women-in-india/
2. https://echetana.com/wp-content/uploads/2021/04/9.-A-H-Brahmprakash-Yadav.pdf
3. https://shodhgangotri.inflibnet.ac.in/bitstream/20.500.14146/2324/1/synopsis.pdf
4. https://www.quora.com/Who-are-some-of-the-remarkable-women-in-Indias-medieval-history
5. https://haryanarajbhavan.gov.in/hi/publication/uo&Hkkjr&ds&fuekZ.k&esa&efg
6. https://www.ijsrst.com/paper/10762.pdf
7. https://www.epw.in/engage/article/insights-female-labour-force-participation-india#:~:text=While%20the%20Indian%20economy%20is,rural%20India%20(Pandey%202023).
8. https://www.markinblog.com/how-many-entrepreneurs/#:~:text=1.-,How%20Many%20Entrepreneurs%20Are%20There%20in%20India%3F,adult%20population%20in%20the%20country.
9. https://economictimes.indiatimes.com/small-biz/entrepreneurship/the-rise-of-women-in-entrepreneurial-roles-in-india/articleshow/108317138.cms?from=mdr
10. https://www.shankariasparliament.com/current-affairs/womens-participation-in-politics
11. https://echetana.com/wp-content/uploads/2021/04/9.-A-H-Brahmprakash-Yadav.pdf

राजनीति में आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग के बढ़ता वर्चस्व

डॉ. राकेश कुमार*

शोध सार –

प्रस्तुत अध्ययन "राजनीति में आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग के बढ़ते वर्चस्व" पर केंद्रित है। इस अध्ययन में राजनीति में बढ़ते आर्थिक रूप में सम्पन्न लोगो का किस प्रकार से प्रभाव बढ़ रहा है उसे ध्यान में रखा गया है। आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में धन का प्रभाव चुनावी प्रक्रिया, नीति निर्माण और जनप्रतिनिधियों की जवाबदेही को प्रभावित करता है। भारत सहित कई देशों में चुनावी खर्च, मीडिया कवरेज और लॉबिंग की शक्ति ने आर्थिक रूप से मजबूत व्यक्तियों और कॉर्पोरेट समूहों को राजनीतिक सत्ता तक पहुँचने का अवसर दिया है। इस शोध का उद्देश्य यह समझना है कि किस प्रकार आर्थिक संसाधन राजनीतिक शक्ति को आकार देते हैं और इसके परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक मूल्यों पर क्या प्रभाव पड़ता है। अध्ययन में यह पाया गया कि आर्थिक रूप से संपन्न उम्मीदवारों की जीत की संभावना अधिक होती है, क्योंकि वे प्रचार, जनसंपर्क और संगठनात्मक ढांचे पर अधिक खर्च कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, नीति निर्माण में भी धनाढ्य वर्ग का प्रभाव देखा जाता है, जिससे आम जनता की आवश्यकताओं की उपेक्षा होती है। यह लेख इस परिकल्पना पर आधारित है कि राजनीति में धन का बढ़ता वर्चस्व लोकतांत्रिक समानता को कमजोर करता है और सामाजिक असमानताओं को बढ़ावा देता है। निष्कर्षतः, लोकतं त्र की सुदृढ़ता के लिए आवश्यक है कि चुनावी सुधार, पारदर्शिता और जनभागीदारी को बढ़ावा दिया जाए ताकि आर्थिक शक्ति का असंतुलन कम हो सके।

मुख्य शब्द - राजनीति, आर्थिक वर्चस्व, लोकतंत्र, चुनावी खर्च, सामाजिक असमानता, नीति निर्माण, आदि

सारांश - *आज* आर्थिक रूप से संपन्न लोग राजनीति में प्रवेश करते हैं, चुनावी प्रक्रिया में धन का महत्व, मीडिया और जनसंपर्क पर खर्च, नीति निर्माण में कॉर्पोरेट लॉबिंग, लोकतांत्रिक मूल्यों पर प्रभाव, आम जनता की आवाज़ का दबना, और संभावित सुधार जैसे चुनावी फंडिंग पारदर्शिता, जनभागीदारी, और सामाजिक न्याय की आवश्यकता।

उद्देश्य - राजनीति में आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग के बढ़ते वर्चस्व का लोकतांत्रिक प्रक्रिया और सामाजिक समानता पर प्रभाव का विश्लेषण करना।

परिकल्पना - यदि राजनीति में आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग का वर्चस्व बढ़ता है, तो लोकतांत्रिक समानता कमजोर होगी और सामाजिक असमानता बढ़ेगी।

सारांश राजनीति और लोकतंत्र का मूल आधार समानता और जनप्रतिनिधित्व है, लेकिन आधुनिक समय में आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग का वर्चस्व इस आधार को चुनौती देता दिखाई देता है। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में चुनावी प्रक्रिया को निष्पक्ष और पारदर्शी बनाए रखने का प्रयास किया जाता है, किंतु वास्तविकता यह है कि धन का प्रभाव चुनावी राजनीति में निर्णायक भूमिका निभाता है। भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश में चुनावी खर्च इतना अधिक हो गया है कि सामान्य उम्मीदवार के लिए चुनाव लड़ना लगभग असंभव हो गया है। चुनाव प्रचार में मीडिया कवरेज, जनसंपर्क, रैलियाँ, सोशल मीडिया अभियान और संगठनात्मक ढांचे पर भारी खर्च होता है, जिसे केवल आर्थिक रूप से संपन्न उम्मीदवार ही वहन कर सकते हैं। परिणामस्वरूप, राजनीति में प्रवेश करने वाले अधिकांश लोग या तो स्वयं धनाढ्य होते हैं या उन्हें कॉर्पोरेट और उद्योग जगत से वित्तीय सहयोग प्राप्त होता

* सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, सुरेंद्र प्रसाद यादव कॉलेज, गया

है। यह प्रवृत्ति लोकतंत्र की उस भावना को कमजोर करती है जिसमें हर नागरिक को समान अवसर मिलना चाहिए।

अवलोकन से प्रतीत होता है की धन का प्रभाव केवल चुनावी प्रक्रिया तक सीमित नहीं है, बल्कि नीति निर्माण और शासन व्यवस्था में भी इसका गहरा असर देखा जाता है। कॉर्पोरेट लॉबिंग, राजनीतिक चंदा और चुनावी फंडिंग के माध्यम से उद्योग जगत अपनी नीतिगत प्राथमिकताओं को आगे बढ़ाता है। उदाहरणस्वरूप, कर नीति, भूमि अधिग्रहण, पर्यावरणीय नियम और श्रम कानूनों में अक्सर ऐसे संशोधन किए जाते हैं जो आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग के हितों को साधते हैं। इससे आम जनता की आवश्यकताओं और समस्याओं की उपेक्षा होती है। लोकतंत्र का मूल उद्देश्य जनकल्याण है, किंतु जब नीति निर्माण धनाढ्य वर्ग के हितों पर केंद्रित हो जाता है, तो सामाजिक असमानता बढ़ती है। इसके अतिरिक्त, मीडिया पर भी आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग का नियंत्रण बढ़ता जा रहा है। चुनावी प्रचार में विज्ञापन और जनमत निर्माण के लिए मीडिया का उपयोग किया जाता है। बड़े उद्योगपति और धनाढ्य राजनेता मीडिया संस्थानों में निवेश करते हैं, जिससे समाचार कवरेज पक्षपातपूर्ण हो जाता है। परिणामस्वरूप, जनता तक वही जानकारी पहुँचती है जो आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग के हितों को साधती है। यह लोकतांत्रिक संवाद और विचार-विमर्श की स्वतंत्रता को सीमित करता है।

राजनीति में धन का वर्चस्व सामाजिक संरचना पर भी असर डालता है। जब आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग राजनीति में हावी होता है, तो समाज में वर्गीय असमानता और गहरी होती है। गरीब और मध्यम वर्ग की आवाज़ दब जाती है, जिससे लोकतंत्र केवल औपचारिकता बनकर रह जाता है। चुनावों में धन का प्रभाव इतना अधिक हो गया है कि जनता की भागीदारी केवल मतदान तक सीमित रह जाती है, जबकि वास्तविक सत्ता आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग के हाथों में होती है। इस स्थिति से निपटने के लिए चुनावी सुधार आवश्यक हैं। चुनावी फंडिंग में पारदर्शिता, राजनीतिक दलों के खर्च की सीमा तय करना, जनभागीदारी को बढ़ावा देना और मीडिया की स्वतंत्रता सुनिश्चिmत करना लोकतंत्र को सुदृढ़ बना सकते हैं। भारत में चुनाव आयोग ने कई सुधार किए हैं, किंतु अभी भी चुनावी खर्च और राजनीतिक चंदे में पारदर्शिता की कमी है। यदि लोकतंत्र को मजबूत बनाना है, तो आर्थिक शक्ति का असंतुलन कम करना होगा। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी यही प्रवृत्ति देखी जा सकती है। अमेरिका, यूरोप और अन्य देशों में कॉर्पोरेट लॉबिंग और चुनावी फंडिंग ने राजनीति को प्रभावित किया है। वहाँ भी आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग नीति निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाता है। इससे स्पष्ट होता है कि राजनीति में धन का वर्चस्व एक वैश्विक समस्या है।

भारत सहित कई देशों में चुनाव आयोग ने सुधार किए हैं, किंतु अभी भी चुनावी खर्च और राजनीतिक चंदे में पारदर्शिता की कमी है। यदि लोकतंत्र को मजबूत बनाना है, तो आर्थिक शक्ति का असंतुलन कम करना होगा। लोकतंत्र की सुदृढ़ता के लिए आवश्यक है कि जनता की भागीदारी बढ़े और राजनीति में धन का प्रभाव कम हो। तभी लोकतंत्र अपने वास्तविक उद्देश्य – जनकल्याण और समान अवसर – को पूरा कर सकेगा। राजनीति में आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग का बढ़ता वर्चस्व आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं के लिए एक गंभीर चुनौती है। लोकतंत्र का मूल आधार समानता और जनप्रतिनिधित्व है, किंतु जब राजनीति धन पर आधारित हो जाती है, तो यह आधार कमजोर पड़ जाता है। भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश में चुनावी खर्च इतना अधिक हो गया है कि सामान्य उम्मीदवार के लिए चुनाव लड़ना लगभग असंभव हो गया है। चुनाव प्रचार में मीडिया कवरेज, जनसंपर्क, रैलियाँ, सोशल मीडिया अभियान और संगठनात्मक ढांचे पर भारी खर्च होता है, जिसे केवल आर्थिक रूप से संपन्न उम्मीदवार ही वहन कर सकते हैं। परिणामस्वरूप, राजनीति में प्रवेश करने वाले अधिकांश लोग या तो स्वयं धनाढ्य होते हैं या उन्हें कॉर्पोरेट और उद्योग जगत से वित्तीय सहयोग प्राप्त होता है। यह प्रवृत्ति लोकतंत्र की उस भावना को कमजोर करती है जिसमें हर नागरिक को समान अवसर मिलना चाहिए। धन का प्रभाव केवल चुनावी प्रक्रिया तक सीमित नहीं है, बल्कि नीति निर्माण और शासन व्यवस्था में भी इसका

गहरा असर देखा जाता है। कॉर्पोरेट लॉबिंग, राजनीतिक चंदा और चुनावी फंडिंग के माध्यम से उद्योग जगत अपनी नीतिगत प्राथमिकताओं को आगे बढ़ाता है। उदाहरणस्वरूप, कर नीति, भूमि अधिग्रहण, पर्यावरणीय नियम और श्रम कानूनों में अक्सर ऐसे संशोधन किए जाते हैं जो आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग के हितों को साधते हैं। इससे आम जनता की आवश्यकताओं और समस्याओं की उपेक्षा होती है। लोकतंत्र का मूल उद्देश्य जनकल्याण है, किंतु जब नीति निर्माण धनाढ्य वर्ग के हितों पर केंद्रित हो जाता है, तो सामाजिक असमानता बढ़ती है। मीडिया पर भी आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग का नियंत्रण बढ़ता जा रहा है। चुनावी प्रचार में विज्ञापन और जनमत निर्माण के लिए मीडिया का उपयोग किया जाता है। बड़े उद्योगपति और धनाढ्य राजनेता मीडिया संस्थानों में निवेश करते हैं, जिससे समाचार कवरेज पक्षपातपूर्ण हो जाता है। परिणामस्वरूप, जनता तक वही जानकारी पहुँचती है जो आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग के हितों को साधती है। यह लोकतांत्रिक संवाद और विचार-विमर्श की स्वतंत्रता को सीमित करता है वर्तमान समय में चुनाव प्रक्रिया की स्थिति से निपटने के लिए स्वच्छ चुनावी सुधार आवश्यक हैं। चुनावी फंडिंग में पारदर्शिता, राजनीतिक दलों के खर्च की सीमा तय करना, जनभागीदारी को बढ़ावा देना और मीडिया की स्वतंत्रता सुनिश्चित करना लोकतंत्र को सुदृढ़ बना सकते हैं। भारत में चुनाव आयोग ने कई सुधार किए हैं, किंतु अभी भी चुनावी खर्च और राजनीतिक चंदे में पारदर्शिता की कमी है। यदि लोकतंत्र को मजबूत बनाना है, तो आर्थिक शक्ति का असंतुलन कम करना होगा। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी यही प्रवृत्ति देखी जा सकती है। अमेरिका, यूरोप और अन्य देशों में कॉर्पोरेट लॉबिंग और चुनावी फंडिंग ने राजनीति को प्रभावित किया है। वहाँ भी आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग नीति निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाता है। इससे स्पष्ट होता है कि राजनीति में धन का वर्चस्व एक वैश्विक समस्या है।

निष्कर्षतः- राजनीति में आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग का बढ़ता वर्चस्व लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए चुनौती है। यह समानता, जनप्रतिनिधित्व और सामाजिक न्याय को कमजोर करता है। लोकतंत्र की सुदृढ़ता के लिए आवश्यक है कि चुनावी सुधार किए जाएँ, पारदर्शिता बढ़ाई जाए और जनता की भागीदारी सुनिश्चित की जाए। तभी लोकतंत्र अपने वास्तविक उद्देश्य – जनकल्याण और समान अवसर – को पूरा कर सकेगा। राजनीति में आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग का बढ़ता वर्चस्व लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं की नींव को कमजोर कर रहा है। लोकतंत्र का मूल आधार यह है कि हर नागरिक को समान अवसर मिले और उसकी आवाज़ सुनी जाए। किंतु जब राजनीति धन पर आधारित हो जाती है, तो यह आधार कमजोर पड़ जाता है। चुनावी प्रक्रिया में धन का प्रभाव इतना अधिक हो गया है कि सामान्य नागरिक के लिए राजनीति में प्रवेश करना लगभग असंभव हो गया है। इससे लोकतंत्र केवल औपचारिकता बनकर रह जाता है, जबकि वास्तविक सत्ता आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग के हाथों में होती है।

राजनीति में धन का वर्चस्व लोकतांत्रिक समानता को कमजोर करता है और सामाजिक असमानता को बढ़ावा देता है। आर्थिक रूप से संपन्न उम्मीदवारों की सफलता दर अधिक होती है, जिससे नीति निर्माण में भी धनाढ्य वर्ग का पक्ष मजबूत होता है। यह प्रवृत्ति लोकतांत्रिक संस्थाओं की विश्वसनीयता को कमजोर करती है और आम जनता का विश्वास घटाती है। इस समस्या का समाधान चुनावी सुधारों में निहित है। चुनावी फंडिंग में पारदर्शिता, राजनीतिक दलों के खर्च की सीमा तय करना, जनभागीदारी को बढ़ावा देना और मीडिया की स्वतंत्रता सुनिश्चित करना लोकतंत्र को सुदृढ़ बना सकते हैं। भारत सहित कई देशों में चुनाव आयोग ने सुधार किए हैं, किंतु अभी भी चुनावी खर्च और राजनीतिक चंदे में पारदर्शिता की कमी है। यदि लोकतंत्र को मजबूत बनाना है, तो आर्थिक शक्ति का असंतुलन कम करना होगा।

अंततः, लोकतंत्र की सुदृढ़ता के लिए आवश्यक है कि जनता की भागीदारी बढ़े और राजनीति में धन का प्रभाव कम हो। तभी लोकतंत्र अपने वास्तविक उद्देश्य – जनकल्याण और समान अवसर – को पूरा कर सकेगा।

सन्दर्भ सूची

1. राजRAS. (2024). भारतीय समाज में जाति और वर्ग. Connect Civils. Retrieved from https://rajras.in
2. Testbook. (2023). राजनीतिक सिद्धांत: अर्थ, दायरा, प्रकार और दृष्टिकोण. Testbook IAS Preparation. Retrieved from https://testbook.com
3. eGyanKosh. (n.d.). सामाजिक वर्गों का विकास और विभेदीकरण. Indira Gandhi National Open University. Retrieved from https://egyankosh.ac.in
4. श्रीनिवास, एम. एन. (1996). भारतीय समाजशास्त्र में जाति और वर्ग. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
5. ओमवेद्त, जी. (2004). जाति, वर्ग और राजनीति. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
6. यादव, योगेन्द्र. (2010). भारतीय लोकतंत्र और सामाजिक संरचना. दिल्ली: पेंग्विन इंडिया.
7. Verma, R., & Chhibber, P. K. (2023). Economic Ideology in Indian Politics: Why Do Elite and Mass Politics Differ? Studies in Indian Politics, 11(2), 274–288. Lokniti-CSDS.
8. Schneickert, C. (2022). *Globalizing Political and Economic Elites in National Fields of Power*. JSTOR.
9. Parmigiani,A.(2022). *The Political Power of Economic Elites in Contemporary Western Democracies*. UNRISD Occasional Paper 14.
10. Winters, J. A. (2011). *Oligarchy*. Cambridge University Press.
11. Gilens, M., & Page, B. I. (2014). *Testing Theories of American Politics: Elites, Interest Groups, and Average Citizens*. Perspectives on Politics, 12(3), 564–581.

☙❧

महिलाओं की स्थिति पर नगरीकरण का प्रभाव

डॉ. संध्या कुमारी*

शोध सार -

प्रस्तुत अध्ययन "महिलओं की स्थिति पर नगरीकरण का प्रभाव" है। महिलओं के विकास में नगरीकरण का महत्वपूर्ण योगदान है। नगरीकरण के प्रभाव से शिक्षा, रहन सहन, वेशभूषा आदि में महत्वपूर्ण बदलाव आया है। नगरीकरण' शब्द नगर से ही बना है। सामान्यत नगरीकरण का अर्थ नगरों के उद्भव : विकास, प्रसार एवं पुनर्गठन से लिया जाता है। वर्तमान औद्योगिक नगर औद्योगीकरण की ही देन हैं। जब एक स्थान पर एक या एक से अधिक विशाल उद्योग स्थापित हो जाता है तो उस स्थान पर काररोजगार करने के लिए लोग उमड़ पड़ते हैं और धीरे धीरे वह स्थान नगर के रूप-में विकसित हो जाता है। नगरीकरण को परिभाषित करते हुए ब्रीज लिखते हैं, "नगरीकरण एक प्रक्रिया है जिसके कारण लोग नगरीय कहलाने लगते हैं, शहरों में रहने लगते हैं, कृषि के स्थान पर अन्य व्यवसायों को अपनाते हैं जो नगर में उपलब्ध हैं और अपने व्यवहार कृत परिवर्तन का समावेश करते हैं। डेविस के अनुसार, "नगरीकरण एक निश्चित प्रक्रिया है, परिवर्तन का वह चक्र है जिससे कोई समाज कृषक से औद्योगिक समाज में परिवर्तित होता है।" बर्गेल के अनुसार, "ग्रामीण क्षेत्रों को नगरीय क्षेत्र में बदलने की प्रक्रिया को ही हम नगरीकरण कहते हैं।" कहा जाय तो नगर में रोजगार के साथ व्यक्ति गतिशील अधिक हो जाता है जिसमे महिलाये भी रोजगार के लिए घर से बाहर निकल रहे है नगरो में महिलओं के बहार निकलने से उनकी स्थिति में सकारात्मक सुधार हो रहा है

विशिष्ट शब्द - नगरीकरण, औदौगीकरण, व्यहार, गतिशील, पुनर्गठन, विकसित आदि

सारांश - नगरीकरण जीवन जीने की एक विधि है, जिसका प्रसार शहरों से गाँवों की ओर होता है। नगरीय जीवन जीने की विधि को नगरीयता या नगरवाद कहते हैं। नगरवाद केवल नगरों तक ही सीमित नहीं होता वरन् गाँव में रहकर भी लोग नगरीय जीवन विधि को अपना सकते हैं। उद्योगों की स्थापना के साथसाथ ही भारत - में नगरीकरण की प्रक्रिया भी तीव्र हुई है। ग्रामीण लोग देश के विभिन्न भागों में स्थित कारखानों में काम करने के लिए गमन करने लगे हैं, फलस्वरूप महानगरीय एवं नगरीय जनसंख्या में वृद्धि हुई है।(1) भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने यहाँ के समाज और जनजीवन को बहुत कुछ प्रभावित किया है। इसके परिणामस्वरूप एक तरफ अनेक सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं तो दूसरी ओर कई सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों एवं समस्याओं को भी पनपने का मौका मिला है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नगरीकरण का अर्थ केवल ग्रामीण जनसंख्या का शहर में आकर बसना या भूमि से सम्बन्धित कार्यों के स्थान पर अन्य कार्यों में अपने को लगाना ही नहीं है। लोगों के नगर में आकर बस जाने मात्र से ही उनका नगरीकरण नहीं हो जाता। ग्रामीण व्यक्ति भी जो कि ग्रामीण व्यवसाय और आदतों को त्यागते नहीं हैं, नगरीय हो सकते हैं, यदि वे नगरीय जीवनशैली-, मनोवृत्ति, मूल्य, व्यवहार एवं दृष्टिकोण को अपना लेते हैं। नगरीकरण की प्रक्रिया ने भारतवर्ष में पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध से चल रही है, देश में अनेकानेक परिवर्तन उत्पन्न कर दिये हैं और जनजीवन को गहराई से प्रभावित किया है,महिलओं के साथ ही साथ समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को निम्न रूप में देख सकते है(2)

1. शिक्षा का प्रसार - शिक्षा का प्रसार से महिला एवं पुरुष में भेदभाव में कमी आया है। भारत में शिक्षितों की संख्या बढ़ रही है, क्योंकि प्रत्येक सघन अबादी में विद्यालय खुल रहे है। शिक्षा के व्यापक प्रसार से अंधविश्वास में कमी आई हैं। सामाजिक जीवन की अधिक गहरी समझ, विचारों का आदान प्रदान-,

* समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

उद्योगों का विकास, कृषि की उन्नति, व्यापार में विकास आदि सभी कुछ हो रहा है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव महिलओं पर भी पड़ रहा है।[3)]

2. सभ्यताओं का संगम - नगरों में विभिन्न जातियों, प्रदेशों, सम्प्रदायों आदि के लोग एक साथ रहते हैं। विदेशों से भी लोगों का आवागमन होता रहता है। इस प्रकार रहनसहन के तरीकों-, भाषाओं और विभिन्न प्रकार के रीती रिवाज का एक दुसरे से मिलन होता रहता है [(4)]
3. संचार के साधनों का प्रसार - नगरीकरण के साथ संचार के साधनों में भी परिवर्तन होता है। भारत के अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में रेलों, बसों, तार, टेलीफोन आदि की सुविधाओं का व्यापक प्रसार हुआ। इससे नये विचारों का प्रसार एवं विभिन्न विचारधाराओं का तीव्र मिश्रण सम्भव हो सका है।
4. अपराध प्रवृत्ति का प्रसार-- शहर में आवास की सुविधाओं का अभाव रहता है, जनसंख्या अधिक रहती है, धनलोलुपता अधिक पायी जाती है, इसलिए लोगों में नैतिकता का अभाव होता है। झूठ, घूस, चोरी, छल-कपट, मिलावट, शराबखोरी, जुआ, डकैती, हत्या आदि भाँतिभाँति के अपराध सामाजिक जीवन पर हावी होते जा रहे हैं और उसे नारकीय बना रहे हैं। नगरीकरण के कारन मनविये मूल्यों का पतन हो रहा है व्यक्तिवादिता बढती जा रही है [(5)]
5. रहन सहन में कृत्रिमता-- आधुनिक समय में महिलाओं पर भी नगरीकरण का प्रभाव पड़ा है जिसे रहन सहन ,वेश भूषा को देखकर समझा जा सकता है। नगरीकरण के प्रभाव से गाँवों का स्वाभाविक एवं प्राकृतिक जीवन कृत्रिम रूप ग्रहण करने लगता है। कोल्ड स्टोरेज की सब्जियाँ, दवाओं से युक्त गेहूँ, पॉलिश किया हुआ चावल, रँगी हुई दाल, कृत्रिम वनस्पति घी एवं मक्खन, सेन्ट डाला हुआ कड़ूवा तेल, टिन में बन्द अन्य खाद्य सामग्रियों का प्रयोग करते हैं। वस्त्रों में सूती, ऊनी व रेशमी वस्तुओं के स्थान पर बनावटी रेशों के वस्त्र; जैसे टेरेलीन , नायलॉन आदि; का प्रयोग किया जाता है।[(6)]
6. स्वास्थ्य में गिरावट, किन्तु जीवनावधि में वृद्धि रहन-- सहन की अनियमितता तथा अशुद्ध वस्तुओं के सेवन आदि के कारण नगरीकरण से लोगों के सामान्य स्वास्थ्य में गिरावट आती है। किन्तु चिकित्सा की उत्तम पद्धतियों में रोगों का निराकरण भी हो जाता है, और नगर में रहने वाला भारतीय कमजोर, किन्तु अधिक लम्बा जीवन जीता है।
7. नशीले द्रव्यों के सेवन में वृद्धि - नगरीकरण का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया है की आज महिलाएं भी नशा करने लगी है नगरीकरण के प्रभाव से लोगों में शराब, अफीम, एल० एस० डी०, मारिजुआना, हीरोइन, भाँग आदि के सेवन की प्रवृत्ति बढ़ती है, क्योकि नगरीय जीवन में तनाव से शान्ति प्राप्त करने हेतु नशीले द्रव्यों का सेवन आवश्यक बन जाता है। इनके साथिओं के बीच भी शराब आदि की आदत भी बढ़ते जाती है।[(7)]
8. भौतिकवाद की प्रधानता - आज महिला हो या पुरुष भौतिकवाद की और अग्रसर है नागरिकरण के प्रभाव के कारण भारतीय समाज के आदर्शवादी सिद्धान्त समाप्त होने लगे हैं। लोगों का ध्यान आत्मिक विकास के स्थान पर भौतिक सुख सम्पन्नता प्राप्त करने पर अधिक रहने लगा है। इससे पारस्परिक संघर्ष, ईर्ष्याद्वेष-, वैमनस्य, प्रतियोगिता को बढ़ावा मिला है और तनाव चिन्ता में वृद्धि है हुई- नगरीकरण के प्रभाव से भारतीय आर्थिक जीवन भी काफी प्रभावित है, जिसे हम निम्न रूप में देख सकते है [(*)]

   1- पूँजीवाद का विकास - आज महिलाएं भी पूंजीपति की श्रेणी में शामिल हो रही है उद्योगों और व्यापारिक कार्यों महिलाएं आगे आकर कार्य कर रहे है कई महिलाये आज उद्योगपति की श्रेणी में शामिल है पास साधनसुविधाएँ

   2- कुटीर उद्योगों का ह्रास - नगरीकरण के कारन जहाँ बड़े उद्योगों का विकाश तो हुआ परन्तु कुटीर उदोगों में कमी आई है, जिससे महिलाएं बेरोजगार भी हुई है , पूर्व में छोटे छोटे उद्योग में

अधिकांश महिलाये भी कार्य करती थी वहीँ आज बड़े उद्योगों में महिलओं की संख्या नगन्य हो गई है[9]

3- बेकारी में वृद्धि - नगरीकरण के साथसाथ बेकारी में वृद्धि होती है-, क्योंकि बड़े उद्योगों में मशीनें मानवीय श्रम का स्थान ले लेती हैं, जिससे बेकारी बढ़ जाती है। व्यवसाय के अभाव से निर्धनता बढ़ती है। नगरीकरण से ऐसे शिक्षित नवयुवकों की संख्या बढ़ती है, जो केवल पढ़ते के साथ कार्य - करना चाहते पढने है वे बेरोजगार होते जा रहे हैवे ही आगे [)!)] वे ही आगे बढ़ रहे है

4- प्रशासनिक समस्याओं में वृद्धि - नगरीकरण के कारन महिला सुरक्षा जैसी समस्या दिनोदिन बढती जा रही है। नगरीकरण के साथ-साथ अनेक नयी प्रशासनिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं; जैसे-नागरिक सुरक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, अपराधों पर नियन्त्रण, शिक्षा का संगठन, व्यापार का संगठन, उद्योगों का संचालन एवं व्यवस्था, हड़ताल वे तालाबन्दी। इनसे अशान्ति बढ़ती है।[11]

निष्कर्ष - महिलाओं पर जिस गति से नगरीकरण का प्रभाव पड़ रहा है उससे एक तरफ जहाँ वे उन्नति की और अग्रसर है वहीँ दूसरी ओर भारतीय संस्कृति की रहन सहन , वेश भुसा वयाहर पतन की ओर जा रहा है समाज का विकास तो हो रहा है परन्तु व्यक्तिवादी प्रवृति से एकांकी परिवार का विकास तेजी से हो रहा है के कारण लोगों में जीवन के उच्च मूल्यों के प्रति विश्वास कम होता जा रहा है। नगरीकरण के साथ नैतिक भावना व नैतिक मूल्यों में आस्था समाप्त होती जा रही है। अनैतिक मूल्य और अपराध बढ़ रहे हैं। महिलाओं को बाज़ार की मांग के अनुरूप गैर-पारंपरिक कौशल में प्रशिक्षण देना और महिलाओं के लिये सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में वृहत रोज़गार सृजित करना वित्तीय सशक्तीकरण के लिये महत्त्वपूर्ण है। देश भर में महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिये वर्तमान सरकार की पहल और तंत्र के बारे में महिलाओं के बीच जागरूकता बढ़ाने हेतु एक बहु-क्षेत्रीय रणनीति तैयार की जानी चाहिये। अंततः कहा जा सकता है की 'महिलाओं की स्थिति में पूर्व की तुलना में काफी सुधार हुआ है सरकारी और गैरसरकारी संगठन अपने अपने स्तर से महिलओं के विकास के लिए अनेक कार्यक्रम चला रहे है जिसका प्रभाव दिख भी रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. **नागरिकरण और महिला सशक्तिकरण** , गौरव धमीजा, पुनर्जित रॉयचौधरी, बिनय शंकर प्रकाशन: *जर्नल ऑफ पॉपुलेशन इकॉनॉमिक्स (Springer Nature)* वर्ष: 2025
2. **नागरिकरण और महिला सशक्तिकरण: भारत का परिप्रेक्ष्य** , गौरव धमीजा, पुनर्जित रॉयचौधरी, बिनय शंकर प्रकाशन: *Indian Statistical Institute, Delhi Centre* वर्ष: 2024
3. **शहरीकरण और लैंगिक समानता: भारतीय परिप्रेक्ष्य**, तुहिना मजूमदार, प्रो. देबाशीष घोष प्रकाशन: *Techno India University, West Bengal* वर्ष: 2023
4. **भारतीय समाज में शहरीकरण और महिला शिक्षा**, मालती सुब्रमणियन प्रकाशन: *सोशियोलॉजिकल स्टडीज ऑफ इंडिया* वर्ष: 2019
5. **शहरीकरण और महिला रोजगार अवसर**, नायला कबीर प्रकाशन: *जेंडर एंड डेवलपमेंट जर्नल* वर्ष: 2018
6. **शहरीकरण और महिला स्वास्थ्य सेवाएँ**, लीला विसारिया प्रकाशन: *इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ* वर्ष: 2020
7. **Does Urbanization Empower Women? Evidence from India** , Gaurav Dhamija, Punarjit Roychowdhury, Binay Shankar Publication: *Journal of Population Economics (Springer Nature)* Year: 2025
8. **Role of Urbanization in Gender Equality: The Indian Context** , Tuhina Mazumdar, Debashis Ghosh Publication: *Techno India University Research Papers* Year: 2023
9. **Urbanization and Women's Employment Opportunities** , Naila Kabeer Publication: *Gender and Development Journal* Year: 2018
10. **Urbanization and Women's Identity in India** , Sharmila Rege Publication: *Economic and Political Weekly* Year: 2017
11. **Urbanization and Women's Rights Movements**,: Kamala Bhasin Publication: *Women Unlimited Press* Year: 2016

cs80

हिन्दी साहित्यिक आलोचना में भारतीय ज्ञान परंपरा और नई शिक्षा नीति की संगति

डॉ. प्रीतिलता सिंह*

Abstract (सारांश):

हिन्दी साहित्यिक आलोचना की परंपरा में भारतीय ज्ञान परंपरा की उपस्थिति तथा उसकी पुनर्स्थापना में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की भूमिका का विश्लेषण करता है। भारतीय साहित्यिक विमर्श सदैव से रस, अलंकार, धर्म, नैतिकता और लोक चेतना से जुड़ा रहा है, किंतु औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था के प्रभाव में पाश्चात्य सिद्धांतों की प्रधानता बढ़ती गई। नई शिक्षा नीति *2020* भारतीय भाषाओं, सांस्कृतिक जड़ों और पारंपरिक ज्ञान-परंपराओं को पुनर्स्थापित करने का प्रयास करती है। इस परिप्रेक्ष्य में यह शोध हिन्दी साहित्यिक आलोचना में भारतीय दृष्टिकोण-जैसे ध्वनि सिद्धांत, रसमीमांसा, नाट्यशास्त्र आदि को पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता और संभावनाओं को रेखांकित करता है। यह अध्ययन यह भी विश्लेषित करता है कि कैसे शिक्षा नीति भारतीय ज्ञान परंपरा को हिन्दी आलोचना में समावेशित कर स्वदेशी आलोचना पद्धति की पुनर्रचना का मार्ग प्रशस्त कर रही है। यह शोध साहित्य, शिक्षा और संस्कृति इन तीनों बिंदुओं पर खड़ा होकर एक नवविवेचना की मांग करता है। हिन्दी साहित्य आलोचना में भारतीय संस्कृति सदा सामूहिकता को प्राथमिकता दिए हैं, हमारी भारतीय ज्ञान परंपरा बहुत से दर्शन स्थापित किए हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा ने समूचे विश्व में अपना गहरा असर छोड़ा है।

Keywords (बीज शब्द): साहित्य, आलोचना, भारतीय ज्ञान परम्परा, शिक्षण प्रणाली, नई शिक्षा नीति 2020, रस सिद्धांत, नाट्यशास्त्र, ध्वनि सिद्धांत, पारंपरिक विमर्श, भारतीय शिक्षा दर्शन, स्वदेशी आलोचना।

Introduction(प्रस्तावना):

हिंदी साहित्यिक आलोचना भारतीय साहित्यिक परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो केवल साहित्य की व्याख्या या सौंदर्य बोध तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिप्रेक्ष्य में रचनाओं का मूल्यांकन भी करती है। साहित्य किसी समाज का दर्पण होता है और आलोचना उस दर्पण की परख का माध्यम। भारतीय ज्ञान परंपरा विशालकाय है जो बहती नदी की भांति कहीं तीव्र कहीं मंद वेग से बहती हुई वर्तमान समय में हमारे सामने है। जो वेदों, उपनिषदों से प्रवाहित होकर हिंदी में समायी हुई है। हमारी अनमोल धरोहर वैष्णव सम्प्रदाय में रामायण और महाभारत जैसे महान महाकाव्य भारतीय संस्कृति की परम्परा में अनुपम छाप है। भारतीय ज्ञान परम्परा विकसित होकर भक्तिकाल में सर्वाधिक तेजी से प्रकट हुई है। तुलसी एवं सुर जैसे कवियों ने रामचरितमानस जैसे महाकाव्य की रचना कर उसे जन मानस तक पहुंचाया।

भारतीय ज्ञान परम्परा निश्चल, निर्मल एवं पवित्र स्रोत वाहिनी की भांति ही वैदिक युग से प्रवाहमान है। हर एक संस्कृति की धरोहर वहां के प्राचीन ग्रन्थों में स्थापित है। भारतीय ज्ञान परम्परा के समूचे साहित्य में देखा जाय तो "शास्त्र (विज्ञान, दर्शन, इतिहास आदि), काव्य (शास्त्रों से इतर) यदि शास्त्र और काव्य में अंतर किया जाय तो शास्त्र की भाषा रिजु (सीधी) काव्य की भाषा वक्र (व्यंजना पूर्ण) होती है। काव्य और शास्त्र दोनों ही भारतीय ज्ञान परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वैदिक एवं लौकिक संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश की तटों को स्पर्श करती हुई हिंदी तक पहुंचती है। शास्त्रों में जहाँ विज्ञान और दर्शन वर्णित है वहीं काव्य में परम्परा निहित है। वेद भारतीय संस्कृति, ज्ञान और सभ्यता का मूल है। उन्हीं में समस्त भाषाओं के ज्ञान का स्वरुप है। परम्परा के आधार पर संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश से विकसित होती हिंदी संस्कृत की ही पुत्री कहलाती है। हिंदी उसी ज्ञान को विभिन्न विधाओं की माध्यम से प्रत्येक जिज्ञासु तक पहुंचती है। इसी ज्ञान परम्परा का निर्वहन करते हुए हिंदी साहित्य अपने पथ पर अग्रसर है।"

समूचे विश्व को भारतीय ज्ञान परंपरा ने प्रभावित किया है। हमारी भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है पंच महायज्ञ, प्राचीन जीवन मूल्य, षोडश संस्कार, चिकित्सा, भारतीय आयुर्वेदिक, विज्ञान, शिक्षा पद्धती, उपनिषदीय गूढ़ विधाएँ, वैदिक ज्ञान, पुराणों में निहित व्यवहारिक ज्ञान समूचे विश्व को प्रकाशमय कर अलौकिक ज्ञान बिखेर रहा है। भारतीय ज्ञान परम्परा और

* ईमेल–pritilatasinghmau@gmail.com, मो. 8604641913

आलोचना की अगली कड़ी में हिंदी साहित्य ने भी अनूठा उदहारण प्रस्तुत किये हैं। मनुष्य की मूल भावनाओं का विषय साहित्य है। हिंदी साहित्य में समय-समय पर भावनाएं व्यक्त होती रहीं हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार, "साहित्य जन समूह की हृदय के विकास है।"

भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान को केवल सूचनाओं के भंडार के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि जीवन को नैतिक, सार्थक और मूल्यपरक बनाने का साधन माना गया है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को केवल रोज़गार के योग्य बनाना नहीं, बल्कि उसे विवेकशील और समाजोपयोगी बनाना है। यही दृष्टि हमें उपनिषदों, गीता, नाट्यशास्त्र और अन्य ग्रंथों में मिलती है। नई शिक्षा नीति 2020 इस परंपरा को पुनर्स्थापित करने का प्रयास करती है और इसे आधुनिक शिक्षा प्रणाली से जोड़कर समूचे विकास को दिशा देती है। इस संदर्भ में हिंदी साहित्यिक आलोचना, भारतीय ज्ञान परंपरा और नई शिक्षा नीति के बीच एक गहरा और रचनात्मक संवाद संभव हो पाता है।

हिंदी साहित्यिक में आलोचना का विकास संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा से हुआ, जहाँ भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में रस सिद्धांत और आनंदवर्धन के ध्वनि सिद्धांत ने साहित्यिक मूल्यांकन को गहराई दी। भरतमुनि ने कहा था, "नाट्यम भिन्नरूपं लोकवृत्तानुकीर्तनम्" (नाटक लोकजीवन का अनुकरण है)। इस वाक्य में साहित्य और जीवन के अभिन्न संबंध की पुष्टि होती है। आधुनिक युग में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आलोचना को समाज और इतिहास से जोड़ा। उनके अनुसार "साहित्य का उद्देश्य केवल हृदय की कोमलता बढ़ाना ही नहीं, बल्कि समाज की प्रति उत्तरदायित्व की भावना जगाना भी है।" उदाहरण के लिए, तुलसीदास की रामचरितमानस या कबीर की साखियों का मूल्यांकन करते हुए उन्होंने उनके युगीन संदर्भ, सामाजिक प्रभाव और जनजागरण की भूमिका को प्रमुखता दी। इसी प्रकार नामवर सिंह ने आलोचना को समकालीनता और विचारधारा से जोड़ा। उन्होंने स्पष्ट लिखा है, "आलोचना का कार्य केवल मूल्यांकन नहीं, बल्कि साहित्य और समाज के बीच संबंधों की पहचान करना भी है।" यह दृष्टि आलोचना को केवल साहित्यिक संरचना तक सीमित न रखकर समाजशास्त्रीय विमर्श का हिस्सा बनाती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषता यह है कि यह जीवन और जगत के हर पक्ष को शिक्षा का हिस्सा मानती है। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है, "सत्यम् ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म।" ज्ञान का उद्देश्य केवल जानना नहीं, बल्कि सत्य और अनंत की खोज करना है। गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा, "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रम् इह वीद्यते।" यह वाक्य स्पष्ट करता है कि शिक्षा और ज्ञान का सर्वोच्च्य मूल्य नैतिक और आत्मिक शुद्धि है। साहित्यिक आलोचना ने इन सिद्धांतों को आत्मसात कर उन्हें आधुनिक संदर्भों में पुनर्परिभाषित किया। रस सिद्धांत आज भी कविता या नाटक के मूल्यांकन में केंद्रीय भूमिका निभाता है। कबीर, तुलसी, सूरदास या मीरा के साहित्य में रसात्मक अनुभूति का विश्लेषण किए बिना उनकी सम्पूर्णता को समझना संभव नहीं। यही दृष्टिकोण आलोचना को भारतीय ज्ञान परंपरा से जोड़ता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा के विकासशील रूप गद्य, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, आलोचना, नाटक, एकांकी, यात्रा, रिपोतार्ज साहित्य समूचे जन साधारण को नवीन चेतना सजगता एवं जागरूकता की ओर ले जाती है तथा जन समूह के हृदय का विकास करती रहती हैं।

नई शिक्षा नीति 2020 भारतीय शिक्षा व्यवस्था के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। यह नीति शिक्षा को केवल नौकरी प्राप्त करने का साधन न मानकर जीवन निर्माण, सांस्कृतिक संवर्धन और समग्र मानवीय विकास का माध्यम मानती है। इसमें भारतीय भाषाओं, विशेषकर मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा पर बल दिया गया है। हिन्दी साहित्य की परंपरा भी यही कहती है कि ज्ञान तभी सार्थक होता है जब वह लोकभाषा और जनजीवन से जुड़ा हो। तुलसी, कबीर, सूर, मीरा से लेकर आधुनिक हिन्दी साहित्य तक ज्ञान और लोक की कड़ी बनी रही है। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्यिक आलोचना और नई शिक्षा नीति का मूल स्वर एक-दूसरे के पूरक हैं।

भारत सरकार ने जुलाई 2020 में नई शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) घोषित की, जो स्वतंत्र भारत की तीसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति है। इससे पहले 1968 और 1986 में शिक्षा नीतियाँ बनी थीं (1986 की नीति को 1992 में संशोधित किया गया था)। लगभग 34 वर्षों के बाद आई इस नीति का उद्देश्य शिक्षा को अधिक समग्र (Holistic), बहुविषयी (Multidisciplinary), लचीला (Flexible) तथा भारतीय ज्ञान परंपरा से जुड़े हुए स्वरूप में विकसित करना है।

नई शिक्षा नीति 2020 शिक्षा के क्षेत्र में एक दूरदर्शी और व्यापक बदलाव का प्रयास है। यह नीति केवल शैक्षणिक संरचना को नया रूप नहीं देती, बल्कि शिक्षा को मानव-केंद्रित, मूल्यपरक और जीवनोपयोगी बनाने का मार्ग भी प्रशस्त करती है।

इसमें एक ओर आधुनिकता, विज्ञान और तकनीक को अपनाने की दृष्टि है तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति, भाषाओं और ज्ञान परंपरा के संरक्षण की प्रतिबद्धता भी है।

नई शिक्षा नीति 2020 शिक्षा को बहुआयामी, समावेशी और संस्कृति-सापेक्ष बनाने की दिशा में एक मील का पत्थर है। NEP कहती है, "The purpose of education is not only cognitive development, but also building character and creating character and creating holistic and creating holistic and well-rounded individuals." इस कथन से स्पष्ट है कि नीति शिक्षा को केवल ज्ञान का माध्यम नहीं मानती, बल्कि उसका उद्देश्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण है। मातृभाषा में शिक्षा देने पर बल, भारतीय ज्ञान परंपरा को पाठ्यक्रम में स्थान देने की पहल, अंतःविषयी अध्ययन, कौशल विकास और Critical thinking को प्राथमिकता - ये सभी बिंदु भारतीय परंपरा और आधुनिक आवश्यकताओं के बीच एक सेतु का कार्य करते हैं। हिंदी साहित्यिक आलोचना इस नीति के उद्देश्यों को साकार करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। आलोचना का मुख्य उद्देश्य ही यह है कि विद्यार्थी केवल रचनाओं का आनंद न लें, बल्कि उन्हें सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से परखने की क्षमता भी प्राप्त हो। यह वही समालोचनात्मक दृष्टि है, जिसे NEP विकसित करना चाहती है।

यदि हम हिंदी आलोचना और NEP को साथ लेकर देखें, तो स्पष्ट होता है कि दोनों का लक्ष्य विद्यार्थियों में विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक क्षमता विकसित करना है। शुक्ल की ऐतिहासिक आलोचना हो या नामवर सिंह की वैचारिक आलोचना, दोनों ही विद्यार्थियों को केवल साहित्य की सुंदरता का अनुभव नहीं कराते, बल्कि उन्हें समाज, राजनीति और संस्कृति से जोड़ते हैं। उदाहरण के लिए, कबीर की वाणी का अध्ययन केवल काव्यगत विशेषताओं तक सीमित न रहकर उनके सामाजिक विद्रोह और समानता के विचारों की दृष्टि से भी किया जाता है। इसी प्रकार, प्रेमचंद के उपन्यासों की आलोचना उनके यथार्थवाद और सामाजिक चेतना की दृष्टि से की जाती है। यह दृष्टिकोण विद्यार्थियों में सामाजिक समझ और मूल्यपरक चेतना को विकसित करता है।

नई शिक्षा नीति का एक महत्वपूर्ण पहलू है अंतःविषयी अध्ययन। साहित्यिक आलोचना स्वभावतः ही अंतःविषयी है। जब हम किसी रचना की आलोचना करते हैं, तो उसमें समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, राजनीति, संस्कृति और दर्शन के पहलुओं का भी अध्ययन करते हैं। उदाहरण स्वरूप, फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास *मैला आँचल* का आलोचनात्मक अध्ययन केवल कथा-सौंदर्य पर नहीं, बल्कि उसमें निहित आंचलिक जीवन, ग्रामीण समाज की समस्याएँ, आर्थिक विषमता और राजनीतिक चेतना पर भी केंद्रित होता है। यही अंतःविषयी दृष्टिकोण NEP की आत्मा है।

व्यावहारिक स्तर पर हिंदी आलोचना NEP को कई तरह से सहयोग दे सकती है। नारी विमर्श और दलित विमर्श पर आधारित आलोचना छात्रों में समानता, न्याय और संवेदनशीलता के मूल्य विकसित करती है। 'महादेवी वर्मा' की कविताओं या 'मन्नू भंडारी' के उपन्यासों का अध्ययन करते समय विद्यार्थी केवल स्त्री-अनुभूति को नहीं समझते, बल्कि समाज में लैंगिक असमानताओं की पहचान भी करते हैं। यह NEP के equity and inclusion के सिद्धांत से मेल खाता है। इसी प्रकार, 'नागार्जुन' और 'त्रिलोचन' की कविताओं में पर्यावरण और प्रकृति का जो स्वर मिलता है, वह विद्यार्थियों को पर्यावरण चेतना से जोड़ता है। यह भी NEP के समग्र विकास और स्थिरता (sustainability) के उद्देश्य को मजबूत करता है।

आलोचना की व्यावहारिक उपयोगिता पाठ्यक्रम निर्माण में भी देखी जा सकती है। यदि आलोचना और भारतीय ज्ञान परंपरा को मिलाकर पाठ्यक्रम तैयार किया जाए, तो इससे न केवल साहित्य का गहरा अध्ययन कर पाएँगे, बल्कि वे अपनी सांस्कृतिक जड़ों से भी जुड़े रहेंगे। उदाहरण के लिए, तुलसीदास के रामचरितमानस की आलोचना केवल धार्मिक दृष्टि से नहीं, बल्कि समाजशास्त्रीय और सांस्कृतिक दृष्टि से भी की जाए, तो यह परंपरा और आधुनिकता दोनों को समझने का अवसर देती है। इसी प्रकार, कबीर की वाणी का अध्ययन उनके समय की सामाजिक विसंगतियों और विद्रोही चेतना के संदर्भ में करने से आलोचना और अधिक जीवंत हो जाती है।

हिन्दी साहित्यिक आलोचना में भारतीय ज्ञान परंपरा और नई शिक्षा नीति (2020) का पारस्परिक संबंध गहन और सार्थक है। भारतीय ज्ञान परंपरा का आधार समग्रता, अनुभव, लोकमंगल और जीवनमूल्यों पर टिका हुआ है। वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, नीतिशास्त्र, बौद्ध-जैन साहित्य, संत-वाणी और आधुनिक हिन्दी साहित्य - सभी में यह परंपरा निरंतर रूप से प्रवाहित होती रही है। साहित्यिक आलोचना इस परंपरा की व्याख्या करते हुए केवल कलात्मक सौंदर्य पर ही नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, नैतिकता और सांस्कृतिक मूल्यों को भी केंद्र में रखती है।

नई शिक्षा नीति का घोषित उद्देश्य भी इसी परंपरा से मेल खाता है। इसमें भारतीय भाषाओं, विशेषतः मातृभाषा हिन्दी के संरक्षण, भारतीय ज्ञान प्रणाली के पुनराविष्कार और शिक्षा को रोजगारोन्मुख होने के साथ-साथ मूल्यपरक बनाने की बात की गई है। यदि हिन्दी साहित्यिक आलोचना भारतीय ज्ञान परंपरा की व्याख्या और विश्लेषण करती है तो नई शिक्षा नीति उसे शिक्षा व्यवस्था में मूर्त रूप देने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार दोनों में स्वाभाविक संगति दिखाई देती है।

हिन्दी आलोचना का मूल आग्रह रहा है कि साहित्य केवल 'रस' का साधन नहीं, बल्कि समाज-निर्माण का उपकरण है। रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य को 'सामूहिक जीवन का दर्पण' माना, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसे सांस्कृतिक पुनर्जागरण का माध्यम समझा और नामवर सिंह ने आलोचना को बहस और विचार-विनिमय का लोकतांत्रिक मंच कहा। यही दृष्टिकोण नई शिक्षा नीति में भी विद्यमान है जहाँ शिक्षा को केवल नौकरी प्राप्ति का साधन न मानकर समग्र मानवीय विकास का साधन कहा गया है।

नई शिक्षा नीति में अंतरविषयक अध्ययन, शोधपरक दृष्टि और भारतीय भाषाओं के संवर्धन पर जो बल है, वह सीधे-सीधे साहित्यिक आलोचना की प्रवृत्तियों को पुष्ट करता है। हिन्दी आलोचना में आज जो विमर्श सक्रिय हैं -स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, पर्यावरण विमर्श, लोक विमर्श - वे भारतीय ज्ञान परंपरा के व्यापक समावेशी दृष्टिकोण से मेल खाते हैं। शिक्षा नीति भी इन्हीं विमर्शों को शिक्षा में स्थान देने का अवसर प्रदान करती है।

इस शोध का निष्कर्ष यही है कि हिंदी साहित्यिक आलोचना, भारतीय ज्ञान परंपरा और नई शिक्षा नीति के बीच एक गहरा संबंध है। आलोचना परंपरा और आधुनिकता का सेतु है, जबकि NEP शिक्षा को परंपरा और वैश्विक आधुनिकता दोनों से जोड़ने का प्रयास है। भारतीय ज्ञान परंपरा इस सेतु को गहराई और आधार देती है। अतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी आलोचना न केवल साहित्य का मूल्यांकन करती है, बल्कि शिक्षा को सांस्कृतिक रूप से समृद्ध, नैतिक रूप से सुदृढ़ और आधुनिकता से युक्त बनाने का कार्य भी करती है। इस प्रकार हिंदी आलोचना, भारतीय ज्ञान परंपरा और नई शिक्षा नीति का संगम भारतीय शिक्षा को अधिक सार्थक और विश्वसनीय दिशा प्रदान कर सकता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्यिक आलोचना में भारतीय ज्ञान परंपरा और नई शिक्षा नीति की संगति केवल सैद्धांतिक नहीं बल्कि व्यावहारिक भी है। आलोचना इस परंपरा के मूल्यों को स्पष्ट करती है और शिक्षा नीति उन्हें भावी पीढ़ियों तक पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त करती है। दोनों मिलकर एक ऐसे ज्ञान समाज की रचना कर सकते हैं जहाँ आधुनिकता और परंपरा का संतुलन बना रहे, शिक्षा का लक्ष्य केवल रोजगार न होकर व्यक्तित्व का विकास हो तथा साहित्य और संस्कृति समाज के नैतिक-मानवीय उत्थान का आधार बनें। यही भारतीय ज्ञान परंपरा की वास्तविक उपलब्धि और नई शिक्षा नीति की सबसे बड़ी चुनौती तथा सफलता होगी।

Bibliography (संदर्भ सूची):

1. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन, 2016।
2. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक, 2022।
3. शुक्ल, रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, अनुपम प्रकाशन, 1 जनवरी 2913।
4. शुक्ल, रामचंद्र, चिंतामणी (निबंध संग्रह), भाग -1,लेख-साहित्य का उद्देश्य,राजकमल प्रकाशन संस्करण, पृष्ठ 12–13
5. अग्रवाल, निशा, भारतीय काव्यशास्त्र, लोकभारतीय प्रकाशन, 2023।
6. वैदिक साहित्य और संस्कृति।
7. सिंह, नामवर, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, किताब महल, इलाहाबाद, 1953।
8. वाजपेयी, नंददुलारे, हिन्दी आलोचना का विकास।
9. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, प्रथम अध्याय।
10. आनंदवर्धन, ध्वन्यालोक।
11. उपनिषद्, तैत्तिरीय उपनिषद्, अध्याय:ब्रह्मानन्दवल्ली (भाग – II), मन्त्र 1, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ ~184
12. National Education Policy 2020 (भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय)।

भारत के उपनिवेश काल में कृषि तकनीक : एक ऐतिहासिक मूल्यांकन

डॉ. रीता कुमारी सिन्हा*

सार :–

भारत के कृषि इतिहास में ब्रिटिश औपनिवेशिक काल एक ऐसे संक्रमणकाल के रूप में उभरता है, जिसमें पारंपरिक कृषि संरचना और आधुनिक तकनीकी हस्तक्षेपों के बीच जटिल अंतःक्रिया देखने को मिलती है। इस काल में कृषि तकनीकों का विकास केवल वैज्ञानिक प्रगति का परिणाम नहीं था, बल्कि यह औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों, वैश्विक बाजार की मांग, तथा प्रशासनिक आवश्यकताओं से गहराई से प्रभावित था। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उपनिवेश काल में विकसित कृषि तकनीकों जैसे सिंचाई प्रणालियाँ, उन्नत औजार, बीज सुधार, एवं कृषि अनुसंधान संस्थानों का ऐतिहासिक मूल्यांकन करना है। यह आलेख इस बात का विश्लेषण करता है कि इन तकनीकी नवाचारों ने भारतीय कृषि के उत्पादन स्वरूप, फसल पैटर्न तथा ग्रामीण सामाजिक संरचना को किस प्रकार प्रभावित किया।

औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत नहरों, बांधों एवं जल प्रबंधन प्रणालियों का विस्तार किया गया, जिससे कुछ क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुई। साथ ही, इंडियन एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट जैसे संस्थानों की स्थापना ने वैज्ञानिक कृषि के विकास को प्रोत्साहित किया। तथापि, इन प्रयासों का प्रमुख उद्देश्य भारतीय कृषि को आत्मनिर्भर बनाने के बजाय उसे वैश्विक पूंजीवादी व्यवस्था के अनुरूप ढालना था।

यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि कृषि तकनीकों का विकास क्षेत्रीय और सामाजिक रूप से असमान था। जहाँ एक ओर पंजाब, उत्तर प्रदेश और मद्रास के कुछ हिस्सों में सिंचाई एवं आधुनिक तकनीकों का विस्तार हुआ, वहीं अधिकांश ग्रामीण क्षेत्र पारंपरिक साधनों पर निर्भर रहे। इसके परिणामस्वरूप उत्पादकता में असमानता, ग्रामीण ऋणग्रस्तता तथा सामाजिक विषमता में वृद्धि हुई। अकालों की आवृत्ति और तीव्रता ने यह स्पष्ट किया कि तकनीकी विकास के बावजूद खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित नहीं हो सकी। नकदी फसलों की ओर झुकाव ने खाद्यान्न उत्पादन को प्रभावित किया, जिससे व्यापक स्तर पर संकट उत्पन्न हुआ।

मुख्य शब्द : उपनिवेश काल, कृषि तकनीक, सिंचाई प्रणाली, वाणिज्यिक कृषि, औपनिवेशिक नीतियाँ, हरित क्रांति इत्यादि।

प्रस्तावना :

भारत में कृषि केवल एक आर्थिक गतिविधि नहीं रही है, बल्कि यह सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक परंपरा और जीवन पद्धति का अभिन्न अंग रही है। प्राचीन और मध्यकालीन भारत में कृषि प्रणाली स्थानीय आवश्यकताओं, प्राकृतिक संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान पर आधारित थी। किंतु 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ईस्ट इंडिया कंपनी के नियंत्रण और तत्पश्चात ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ भारतीय कृषि के स्वरूप में मौलिक परिवर्तन प्रारंभ हुए।

औपनिवेशिक शासन का मूल उद्देश्य भारत को एक उपनिवेश के रूप में विकसित करना था, जहाँ से कच्चे माल की आपूर्ति सुनिश्चित हो सके और ब्रिटिश उद्योगों के लिए बाजार तैयार किया जा सके। इस नीति के तहत कृषि क्षेत्र को विशेष रूप से लक्षित किया गया। परिणामस्वरूप, कृषि तकनीकों का विकास एक स्वाभाविक या स्थानीय प्रक्रिया न होकर औपनिवेशिक हितों द्वारा निर्देशित प्रक्रिया बन गया।

इस संदर्भ में कृषि तकनीकों का अध्ययन केवल तकनीकी दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि व्यापक ऐतिहासिक, आर्थिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में किया जाना आवश्यक है। उपनिवेश काल में कृषि तकनीकों में जो परिवर्तन हुए, वे केवल उत्पादन बढ़ाने तक सीमित नहीं थे, बल्कि उन्होंने भूमि स्वामित्व, श्रम संबंधों, बाजार संरचना और ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं को भी प्रभावित किया।[1]

ब्रिटिश शासन के दौरान एक ओर पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ—जैसे बैल आधारित जुताई, वर्षा आधारित खेती और जैविक खाद प्रचलित रहीं, वहीं दूसरी ओर आधुनिक तकनीकों का सीमित प्रवेश हुआ।

* सहायक प्राध्यापिका (अतिथि), इतिहास विभाग, त्रिवेणी सत्यभामा कॉलेज, हिसुआ, नवादा
E-mail : reetakumarisinha010769@gmail.com, Mob. : 9631963417

सिंचाई के क्षेत्र में नहरों और जलाशयों का निर्माण, उन्नत बीजों का प्रयोग, तथा कृषि अनुसंधान संस्थानों की स्थापना जैसे प्रयास किए गए। हालांकि ये प्रयास व्यापक किसान समुदाय तक नहीं पहुँच सके और मुख्यतः उन क्षेत्रों तक सीमित रहे जहाँ से औपनिवेशिक सरकार को अधिक राजस्व प्राप्त हो सकता था।

भूमि व्यवस्था में परिवर्तन जैसे जमींदारी, रैयतवाड़ी और महालवाड़ी प्रणालियाँ ने भी कृषि तकनीकों के विकास को प्रभावित किया।[2] इन व्यवस्थाओं ने किसानों की आर्थिक स्थिति को कमजोर किया और उन्हें नई तकनीकों में निवेश करने से रोका। उच्च कर दरों, ऋणग्रस्तता और बाजार की अनिश्चितताओं ने कृषि को जोखिमपूर्ण बना दिया।

इसके अतिरिक्त, वाणिज्यिक कृषि के विस्तार ने फसल चक्र को बदल दिया। कपास, नील, जूट, चाय और कॉफी जैसी नकदी फसलों का उत्पादन बढ़ा, जबकि खाद्यान्न फसलों की उपेक्षा हुई। इस परिवर्तन का सीधा प्रभाव ग्रामीण खाद्य सुरक्षा पर पड़ा और अकाल की घटनाएँ बढ़ीं।

इस शोध का उद्देश्य उपनिवेश काल में कृषि तकनीकों के विकास का समग्र विश्लेषण करना है, जिसमें निम्नलिखित प्रमुख प्रश्नों पर विचार किया गया है–

- क्या उपनिवेश काल की कृषि तकनीकें वास्तव में आधुनिकता का प्रतीक थीं?
- इन तकनीकों का लाभ किन वर्गों को प्राप्त हुआ?
- क्या ये तकनीकें भारतीय कृषि के सतत विकास में सहायक रहीं या उन्होंने असमानता को बढ़ावा दिया?

उपनिवेश कालीन कृषि का स्वरूप

- उपनिवेश काल से पूर्व भारतीय कृषि मुख्यतः आत्मनिर्भर प्रकृति की थी। किसान अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादन करते थे और स्थानीय बाजारों तक सीमित रहते थे।
- ब्रिटिश शासन के आगमन के बाद कृषि का स्वरूप बदलकर वाणिज्यिक हो गया। नकदी फसलों जैसे कपास, जूट, नील, चाय और गन्ना का उत्पादन बढ़ाया गया। इससे कृषि उत्पादन का उद्देश्य बदल गया और किसानों को बाजार के उतार–चढ़ाव का सामना करना पड़ा।

कृषि तकनीकों का विकास

- पारंपरिक तकनीकों की निरंतरता
- लकड़ी के हल (चसवनही)
- बैलों द्वारा जुताई
- वर्षा पर आधारित सिंचाई
- जैविक खाद (गोबर खाद)

इन तकनीकों की सीमाएँ थीं, जैसे कम उत्पादकता और प्राकृतिक आपदाओं पर निर्भरता।

आधुनिक औजारों का प्रवेश

- लोहे का हल
- सीड ड्रिल (बीज बोने की मशीन)
- थ्रेशर (फसल मड़ाई मशीन)
- हालांकि ये उपकरण मुख्यतः बड़े जमींदारों और ब्रिटिश कृषकों तक सीमित रहे। छोटे किसान इन्हें अपनाने में असमर्थ थे।

सिंचाई तकनीकों का विकास

सिंचाई के क्षेत्र में उपनिवेश काल में उल्लेखनीय प्रगति हुई। ब्रिटिश सरकार ने बड़े पैमाने पर नहरों का निर्माण कराया, जैसे –

- गंगा नहर प्रणाली
- पंजाब की नहरें
- इन परियोजनाओं का उद्देश्य कृषि उत्पादन बढ़ाना था, किंतु इनसे प्राप्त लाभ का बड़ा हिस्सा सरकार को करों के रूप में मिलता था।

- इसके अतिरिक्त पारंपरिक सिंचाई साधन जैसे कुएँ, तालाब और आहर–पाइन प्रणाली भी प्रचलित रहे।

उन्नत बीज एवं फसल विविधता

- ब्रिटिश शासन के दौरान कुछ उन्नत बीजों का प्रयोग प्रारंभ हुआ, विशेषकर नकदी फसलों में।
- चाय और कॉफी के बागान
- जूट और कपास की उन्नत किस्में
- हालांकि खाद्यान्न फसलों में तकनीकी सुधार अपेक्षाकृत कम हुआ।

कृषि अनुसंधान एवं संस्थागत विकास

- उपनिवेश काल में कृषि अनुसंधान की शुरुआत हुई।
- कृषि विभाग की स्थापना
- कृषि महाविद्यालयों की स्थापना
- अनुसंधान केंद्रों का निर्माण

उदाहरण के रूप में, इंडियन एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना ने वैज्ञानिक कृषि के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

हालांकि इन संस्थाओं का प्राथमिक उद्देश्य ब्रिटिश हितों को बढ़ावा देना था।

भूमि व्यवस्था और तकनीकी विकास का संबंध

- जमींदारी प्रणाली
- रैयतवाड़ी प्रणाली
- महालवाड़ी प्रणाली
- इन व्यवस्थाओं ने कृषि तकनीकों के विकास को प्रभावित किया।
- जमींदारी प्रणाली में किसानों के पास निवेश करने की प्रेरणा कम थी, जबकि रैयतवाड़ी क्षेत्रों में कुछ सुधार देखने को मिले।
- भूमि पर स्वामित्व की अनिश्चितता और उच्च करों के कारण किसान नई तकनीकों को अपनाने में असमर्थ रहे।

कृषि तकनीकों के सकारात्मक प्रभाव

सिंचाई विस्तार : नहरों के निर्माण से कुछ क्षेत्रों में कृषि उत्पादन बढ़ा और सूखा प्रभावित क्षेत्रों को राहत मिली।

वाणिज्यिक कृषि का विकास : नई फसलों के कारण भारत वैश्विक बाजार से जुड़ा और निर्यात में वृद्धि हुई।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास : कृषि अनुसंधान संस्थानों की स्थापना से वैज्ञानिक कृषि पद्धतियों की नींव पड़ी।

कृषि तकनीकों के नकारात्मक प्रभाव

- किसानों का शोषण
- नई तकनीकों और नीतियों का लाभ मुख्यतः ब्रिटिश सरकार और व्यापारिक वर्ग को मिला। किसान कर्ज और गरीबी में फँस गए।

खाद्यान्न संकट : नकदी फसलों के बढ़ते उत्पादन के कारण खाद्यान्न उत्पादन में कमी आई, जिससे अकाल की स्थिति उत्पन्न हुई।

क्षेत्रीय असमानता : तकनीकी विकास कुछ क्षेत्रों तक सीमित रहा, जिससे क्षेत्रीय असंतुलन बढ़ा।

पर्यावरणीय प्रभाव : एकल फसल प्रणाली और अत्यधिक सिंचाई के कारण भूमि की उर्वरता प्रभावित हुई।

अकाल और कृषि तकनीक का संबंध : उपनिवेश काल में अनेक भयंकर अकाल पड़े, जैसे 1876–78 और 1899–1900 के अकाल। इन अकालों का एक कारण कृषि तकनीकों का असंतुलित विकास भी था।

- खाद्यान्न उत्पादन में कमी
- परिवहन सुविधाओं का असमान उपयोग

- सरकारी उदासीनता

स्वतंत्रता के बाद कृषि तकनीकों पर प्रभाव

- उपनिवेश काल की कृषि तकनीकों ने स्वतंत्र भारत की कृषि नीतियों को प्रभावित किया।
- सिंचाई परियोजनाओं का विस्तार
- वैज्ञानिक अनुसंधान का विकास
- हरित क्रांति की आधारशिला

हालांकि स्वतंत्र भारत ने इन तकनीकों को अधिक समावेशी बनाने का प्रयास किया।

ऐतिहासिक मूल्यांकन

उपनिवेश काल की कृषि तकनीकों का मूल्यांकन करते समय यह स्पष्ट होता है कि –

- तकनीकी विकास असंतुलित और सीमित था।
- इसका मुख्य उद्देश्य औपनिवेशिक लाभ था, न कि किसानों का कल्याण।
- पारंपरिक और आधुनिक तकनीकों का मिश्रण देखने को मिला।
- दीर्घकालिक दृष्टि से इस काल ने आधुनिक कृषि के लिए आधार तैयार किया।

इस अध्ययन के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि उपनिवेश काल की कृषि तकनीकें केवल आर्थिक उपकरण नहीं थीं, बल्कि वे औपनिवेशिक सत्ता के नियंत्रण और संसाधनों के दोहन का माध्यम भी थीं। अतः इनका ऐतिहासिक मूल्यांकन भारतीय कृषि के दीर्घकालिक विकास को समझने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

साहित्य समीक्षा :

तिर्थंकर रॉय (2024), रॉय ने अपने नवीन शोध लेखों में औपनिवेशिक भारत की कृषि अर्थव्यवस्था को "मार्केट–ड्रिवन ट्रांसफॉर्मेशन" के रूप में विश्लेषित किया है। वे बताते हैं कि कृषि तकनीकों का विकास मुख्यतः निर्यात–उन्मुख उत्पादन के लिए हुआ, जिससे सिंचाई और परिवहन में सुधार हुआ, लेकिन छोटे किसानों तक इसका लाभ सीमित रहा।[3]

अमर फारूकी (2023) फारूकी ने औपनिवेशिक भारत में वाणिज्यिक कृषि और तकनीकी परिवर्तन के संबंध का अध्ययन किया है। उनके अनुसार, कपास, नील और जूट जैसी फसलों के उत्पादन में तकनीकी हस्तक्षेप बढ़ा, परंतु इससे खाद्यान्न संकट भी उत्पन्न हुआ।[4]

बिस्वमोय पती (2023) पती ने ग्रामीण समाज और औपनिवेशिक कृषि नीतियों के अंतर्संबंधों का विश्लेषण किया है। वे बताते हैं कि तकनीकी सुधारों ने सामाजिक असमानता को और गहरा किया, विशेषकर भूमिहीन किसानों के संदर्भ में।[5]

सुगत बोस एवं आयशा जलाल (2022) इन विद्वानों ने औपनिवेशिक भारत की आर्थिक और सामाजिक संरचना का व्यापक अध्ययन करते हुए कृषि तकनीकों को साम्राज्यवादी नियंत्रण के उपकरण के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, तकनीकी विकास का उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना नहीं, बल्कि संसाधनों का दोहन था।[6]

कौशिक बसु (2022) बसु ने औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के दीर्घकालिक प्रभावों का विश्लेषण करते हुए यह बताया कि कृषि तकनीकों में सुधार के बावजूद आर्थिक असमानता बनी रही। उन्होंने संस्थागत संरचनाओं की भूमिका पर विशेष बल दिया।[7]

अभिजीत बनर्जी एवं एस्तेर डुफ्लो (2021) इन अर्थशास्त्रियों ने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कृषि विकास और तकनीकी हस्तक्षेपों का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि औपनिवेशिक काल की नीतियों ने कृषि निवेश को सीमित किया, जिससे उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा।[8]

चेतन सिंह (2021) चेतन सिंह ने हिमालयी क्षेत्रों में औपनिवेशिक कृषि नीतियों और तकनीकों का अध्ययन किया है। उनके अनुसार, भौगोलिक विविधता के कारण तकनीकी विकास असमान रहा और स्थानीय कृषि पद्धतियाँ लंबे समय तक प्रभावी बनी रहीं।[9]

बिपन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, के.एन. पनिक्कर, सुचेता महाजन (2019) इन विद्वानों ने "india's Struggle for Independence" में औपनिवेशिक नीतियों के अंतर्गत कृषि संरचना के परिवर्तन का विश्लेषण किया है। उनके अनुसार, तकनीकी सुधारों की प्रक्रिया किसानों के हित में नहीं थी, बल्कि यह औपनिवेशिक शोषण को मजबूत करने का माध्यम बनी।[10]

इरफान हबीब (2018) हबीब ने भारतीय कृषि के ऐतिहासिक विकास पर विस्तृत अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट किया कि औपनिवेशिक काल में तकनीकी विकास सीमित था और पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ ही प्रमुख रहीं। वे बताते हैं कि नई तकनीकों का लाभ मुख्यतः जमींदार वर्ग को मिला।[11]

सुमित सरकार (2017) सुमित सरकार ने "Modern India" में औपनिवेशिक काल की कृषि संरचना, भूमि व्यवस्था और तकनीकी बदलावों का विश्लेषण किया है। वे यह तर्क देते हैं कि कृषि तकनीकों में सुधार के बावजूद किसानों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ।[12]

धर्म कुमार एवं मेघनाद देसाई (2016) इन विद्वानों ने "The Cambridge Economic History of India" में औपनिवेशिक काल के आर्थिक ढांचे का विश्लेषण किया है। उन्होंने कृषि तकनीकों के विकास को वैश्विक पूंजीवाद के संदर्भ में देखा है और इसे औपनिवेशिक नियंत्रण का उपकरण बताया है।[13]

आर. सी. दत्त (2010) दत्त ने "Economic History of India" में औपनिवेशिक शासन के आर्थिक प्रभावों का विस्तृत विश्लेषण किया है। उन्होंने स्पष्ट किया कि कृषि तकनीकों का विकास किसानों के हित में नहीं था, बल्कि यह राजस्व वृद्धि के लिए किया गया था।[14]

उद्देश्य :

1. उपनिवेश कालीन भारत में कृषि तकनीकों के विकास की प्रकृति एवं स्वरूप का ऐतिहासिक विश्लेषण करना।
2. पारंपरिक एवं आधुनिक कृषि तकनीकों के अंतर्संबंध को समझना।
3. सिंचाई, कृषि औजार, बीज सुधार एवं अनुसंधान संस्थानों के विकास का मूल्यांकन करना।
4. औपनिवेशिक नीतियों के संदर्भ में कृषि तकनीकों के विकास के उद्देश्यों का विश्लेषण करना।
5. कृषि तकनीकों के सामाजिक एवं आर्थिक प्रभावों विशेषकर किसानों की स्थिति का अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. उपनिवेश काल में कृषि तकनीकों का विकास मुख्यतः औपनिवेशिक आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए किया गया था, न कि किसानों के कल्याण के लिए।
2. कृषि तकनीकों में हुए सुधारों का लाभ समाज के सभी वर्गों को समान रूप से प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि यह मुख्यतः जमींदारों एवं व्यापारिक वर्ग तक सीमित रहा।
3. सिंचाई एवं वाणिज्यिक कृषि के विस्तार के बावजूद खाद्यान्न उत्पादन में संतुलित वृद्धि नहीं हुई, जिसके कारण अकाल की समस्या बनी रही।
4. पारंपरिक कृषि तकनीकों की निरंतरता और आधुनिक तकनीकों का सीमित प्रसार, कृषि उत्पादकता को व्यापक रूप से बढ़ाने में बाधक रहा।
5. उपनिवेश काल की कृषि तकनीकों ने दीर्घकालिक रूप से आधुनिक कृषि विकास की आधारशिला तो रखी, किंतु अल्पकाल में सामाजिक एवं आर्थिक असमानता को बढ़ाया।

निष्कर्ष : भारत के उपनिवेश काल में कृषि तकनीकों का विकास एक जटिल एवं बहुआयामी प्रक्रिया थी, जिसमें तकनीकी प्रगति, औपनिवेशिक नीतियाँ और सामाजिक–आर्थिक संरचनाएँ परस्पर अंतर्संबंधित थीं। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि इस काल में सिंचाई, कृषि औजारों एवं अनुसंधान के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण प्रगति हुई, किंतु इनका लाभ व्यापक स्तर पर किसानों तक नहीं पहुँच सका। औपनिवेशिक शासन ने कृषि तकनीकों का उपयोग मुख्यतः अपने आर्थिक हितों जैसे कच्चे माल की आपूर्ति एवं राजस्व वृद्धि के लिए किया। वाणिज्यिक कृषि के विस्तार ने भारतीय कृषि को वैश्विक बाजार से जोड़ दिया, किंतु इससे खाद्यान्न उत्पादन की उपेक्षा हुई और अकाल की समस्या गंभीर बनी रही। इसके अतिरिक्त, भूमि व्यवस्था, उच्च कर दरों एवं ऋणग्रस्तता ने किसानों को नई तकनीकों को अपनाने से रोका।

अध्ययन यह भी दर्शाता है कि कृषि तकनीकों का विकास क्षेत्रीय रूप से असमान था, जिससे ग्रामीण समाज में विषमता और गहरी हुई। हालांकि दीर्घकालिक दृष्टि से यह काल आधुनिक कृषि विकास की नींव रखने में सहायक सिद्ध हुआ, जिसका प्रभाव स्वतंत्र भारत में हरित क्रांति और वैज्ञानिक कृषि के रूप में देखने को मिलता है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपनिवेश काल की कृषि तकनीकें "विकास और शोषण" दोनों का मिश्रण थीं। इनका ऐतिहासिक मूल्यांकन यह सिखाता है कि तकनीकी प्रगति तभी सार्थक होती है, जब वह सामाजिक न्याय, समावेशन और सतत विकास के सिद्धांतों के साथ जुड़ी हो।

संदर्भ सूची

1. रंधावा, एम. एस. (2015) भारत में कृषि का इतिहास, नई दिल्ली, आईसीएआर, पृ0 36
2. थॉर्नर, डेनियल (2014) भारत में कृषि संरचना, नई दिल्ली, एलाइड पब्लिशर्स, पृ0 55
3. रॉय, तिर्थंकर (2024) औपनिवेशिक भारत और वैश्विक अर्थव्यवस्था, लंदन, रूटलेज, पृ0 64
4. फारूकी, अमर (2023) औपनिवेशिक भारत में कृषि और व्यापार. नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 44
5. पती, बिस्वमोय (2023) औपनिवेशिक भारत में समाज और स्वास्थ्य, नई दिल्ली, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 93
6. बोस, सुगत,–जलाल, आयशा (2022) आधुनिक दक्षिण एशिया : इतिहास, संस्कृति और राजनीतिक अर्थव्यवस्था, लंदन, रूटलेज, पृ0 117
7. बसु, कौशिक (2022) आर्थिक विकास और संस्थाएँ, प्रिंसटन, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 38
8. बनर्जी, अभिजीत,–डुफ्लो, एस्तेर (2021) कठिन समय के लिए अच्छी अर्थशास्त्र, नई दिल्ली, पेंगुइन, पृ0 18
9. सिंह, चेतन (2021) पश्चिमी हिमालय में पारिस्थितिकी और किसान जीवन, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 108
10. चंद्र, बिपन, मुखर्जी, मृदुला, मुखर्जी, आदित्य, पनिक्कर, के.एन.महाजन, सुचेता (2019) भारत का स्वतंत्रता संग्राम, नई दिल्ली, पेंगुइन, पृ0 76
11. हबीब, इरफान (2018) भारतीय अर्थव्यवस्था : औपनिवेशिक काल, नई दिल्ली, तुलिका बुक्स, पृ0 57
12. सरकार, सुमित (2017) आधुनिक भारत (1885–1947) नई दिल्ली, मैकमिलन, पृ0 23
13. कुमार, धर्म–देसाई, मेघनाद (2016) भारत का आर्थिक इतिहास (खंड–2) कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 89
14. दत्त, रोमेश चंद्र (2010) भारत का आर्थिक इतिहास, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, पृ0 88

मध्यकालीन हरम का संक्षिप्त अध्ययन

अजित सिंह*

तुर्की भाषा का *हरम* अरबी के *हारूमा* से लिया गया है जिसका अर्थ होता है "प्रतिबंधित" अनुमत" या "अवैध" लेकिन साथ ही यह "पूरा तरह से सुरक्षित और अलंघ्य" भी होता है। इस शब्द का इसके मूल अर्थ की उपेक्षा करते हुए जितना प्रयोग हुआ है उतना अन्य किसी शब्द का नहीं हुआ होगा। साधारणतः इसका उपयोग घर के एक विशेष भाग के रूप में या उस महल के संदर्भ में किया जाता था जहाँ महिलाएँ रहती थीं।

मुगल भारत में भू-राजस्व व्यवस्था पुराने रीति-रिवाजों और देश की पारंपरिक प्रक्रियाओं से जुड़ी हुई थी। प्रारंभिक मुस्लिम शासकों ने चतुराई से प्राचीन हिंदू राजस्व प्रणाली को बनाए रखा। उन्होंने पुराने हिंदू राजस्व अधिकारियों को नियुक्त किया और विभाग की कार्यप्रणाली में तब तक कोई व्यवधान नहीं डाला जब तक राजस्व कर नियमित रूप से इकट्ठा होता रहा और इसमें कोई समस्या नहीं आई। हालांकि राज्य के अन्य स्रोतों में कुरान की शर्तें और बाहर के इस्लामिक देशों के पुराने नियमों ने भी प्रभाव डाला। इस्लाम के कानून को भारतीय मुस्लिम इतिहास में समायोजित करने का प्रयास लगातार किया गया। इस प्रकार मुग़ल साम्राज्य का राजस्व सिद्धांत जैसा कि 17वीं शताब्दी में विकसित हुआ था हिंदू परंपराओं और अरबी सिद्धांतों का मिश्रण था। इन दोनों विरोधी तत्वों के बीच समझौता हमेशा सुखद या सफल नहीं था और भारतीय परंपराओं का बोझ अंततः अंधविश्वासी कुरान विद्वानों के लिए भारी साबित हुआ जैसा कि फिरोज तुगलक और औरंगजेब के मामलों में देखा गया।

मुगल भारत में कई मामलों में राज्य सबसे बड़ा निर्माता या बड़े पैमाने पर निर्माणकर्ता था। सरकारी खरीद और बड़े पैमाने पर ठेकेदारों को निर्देश देना व्यवस्था आज के कुटीर उद्योगों के संबंध में उस समय अनुपस्थित थी क्योंकि निजी पूंजीपतियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का विपणन बहुत कम था। इसलिए राज्य को मजबूरी में आवश्यक वस्तुएं खुद ही बनानी पड़ती थीं।

इसकी आवश्यकता बहुत अधिक थी। वर्ष में दो बार बारिश और सर्दी के मौसम के अनुसार उपयुक्त वस्त्र (खिल्त सम्राट द्वारा प्रत्येक मनसबदार को प्रदान किए जाते थे। 1690 में मनसबदारों की संख्या 7500 थी जिनमें से 7000 को जागीरें दी गई थीं और वे नकद वेतन प्राप्त करते थे। उच्च सरदारों के लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुओं से सुसज्जित सम्मान स्वरूप एक विशेष सूट भी होता था। इन दो मौसमों के उपहारों के अलावा सम्राट के जन्मदिनों (चंद्र और सूर्य के आधार पर राज्याभिषेक के दिन चंद्रमा के अनुसार वार्षिकी ईदों और औरंगजेब के काल तक फारसी नववर्ष के दिन जब सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता था शहजादे अधीनस्थ राजा कई मनसबदार और न्यायालय के कर्मचारी भी वस्त्र प्राप्त करते थे। एक परंपरा के अनुसार खिल्लत (पोशाक उन व्यक्तियों को दी जाती थी जब वे न्यायपालिका में उपस्थित होते विदाई लेते पदों पर नियुक्त होते या कभी-कभी औरंगजेब के शासनकाल में इस्लाम धर्म अपनाने पर भी।

इस प्रकार शाही सरकार को पूरे वर्ष के लिए वस्त्रों और तैयार कपड़ों का एक बड़ा भंडार रखना पड़ता था। उनकी आपूर्ति सरकार द्वारा साम्राज्य के मुख्य नगरों में स्थित कारखानों के माध्यम से सुनिश्चित की जाती थी जहां कुशल कारीगरों को लाकर सरकार की देखरेख में काम करने के लिए रखा जाता था और उन्हें दैनिक वेतन दिया जाता था। उनकी कला का उत्पादन तैयार किया जाता था और सही तरीके से भंडारों में सुरक्षित किया जाता था।

* प्रवक्ता इतिहास, राजकीय आश्रम पद्धति इंटर कालेज, लखीमपुर, खीरी

यह बात सम्राट के व्यक्तिगत उपभोग और विलासिता की अन्य वस्तुओं पर भी लागू होती थी। **यह कार्य "खाने-ए-सांमा" या लार्ड स्टिवार्ड का जिम्मा था जिसका कार्य बाजारों से आवश्यक वस्त्रों और सामग्रियों की खरीदारी करना और समय पर इनका पर्याप्त मात्रा में उत्पादन सुनिश्चित करना था। मुग़ल सरकार एक उच्च केंद्रीकृत निरंकुश तंत्र थी जिसमें सम्राट सम्पूर्ण प्रशासन के लिए एक केंद्रीय शक्ति था।**

निःसंदेह सरकार का एक प्रतिनिधि होता था जैसे कि फौजदार लेकिन गांवों में गांव की पुलिस का निरीक्षण करने की अनुमति नहीं दी जाती थी। उसका मुख्य कार्य पहले हिंसा की घटनाओं को रोकना या सजा देना था जैसे स्थानीय जमीदारों का विद्रोह डकैतों के संगठित गिरोहों का हमला और भू-राजस्व की अवैध वसूली। न्याय के मामले में मुग़ल सम्राट ने स्वयं को न्याय का स्रोत प्रस्तुत किया और प्राचीन परंपराओं का पालन करते हुए यह सुनिश्चित किया कि राजा को खुले दरबार में मुकदमों की सुनवाई करनी चाहिए।

1.1—हरम की स्थापना एवं विकास

मुगल शासन में स्थायित्व स्थापित हो चुका था चारों ओर शांति और सुव्यवस्था का माहौल था धन की कोई कमी नहीं थी और अकबर तथा उसके शहजादे और पौत्र का विलासिता के प्रति बड़ा आकर्षण था जिसकी झलक उस समय की इमारतों में देखने को मिलती थी। बेगमात की सुख-सुविधाओं का खास ध्यान रखा गया और उनकी आवासीय व्यवस्था को और भी सुंदर बनाने का प्रयास किया गया।

जिससे हरम के भीतर का जीवन में कोई नीरसता न हो। अकबर के शासनकाल में शाही हरम न केवल सुंदर था बल्कि अत्यधिक विस्तृत हो गया कि वह एक छोटे शहर जैसा प्रतीत होने लगा। अबुल फजल ने इसका इस प्रकार वर्णन किया कि सम्राट ने एक विशाल किला बनवाया है जहाँ वह आराम करते हैं। वहां 5000 से अधिक महिलाएं रहती थीं और उनमें से प्रत्येक के लिए एक अलग घर था। इस प्रकार अकबर द्वारा पहली बार हरम की विधिवत स्थापना की गई। जिसे उसके दरबारी अबुल फजल ने "शबिस्तान-ए-इकबाल" या "शबिस्तान-ए-खास" के नाम से संबोधित किया। इस हरम में महिलाएं पूरी सुरक्षा में रहती थीं और वहां बिना सम्राट की अनुमति के कोई भी बाहरी व्यक्ति का प्रवेश नहीं था। यहां तक कि रिश्तेदारों के महल में जाने की सूचना भी सम्राट को दी जाती थी। अगर किसी महिला की तबीयत बिगड़ती थी तो चिकित्सक को इस प्रकार हरम के भीतर लाया जाता था कि उसके सिर पर लंबा कश्मीरी शॉल डाल दिया जाता जो उसके पैरों तक लटकता था और उसका चेहरा आंखों सहित पूरी तरह से ढक जाता था। एक ख्वाजा सिरा चिकित्सक का हाथ पकड़कर उसे उसे रोगी महिला के समीप पहुँचाया जाता था। और उसी तरीके से उसे बाहर लाया जाता था।

यह साफ़ होता है कि हरम को पुरुषों की नजरों से परे रखा जाता था। मुग़ल शासक अपनी राजघराने की महिलाओं के लिए महल के भीतर पृथक-पृथक आवासों की व्यवस्था किया करते थे जहाँ वे अपने माता-पिता से प्राप्त वस्त्र आभूषण परिधान तथा अन्य प्रिय वस्तुएँ सुरक्षित रखती थीं।

जिन्हें उनके पति सगे रिश्तेदारों और उमरा की बेगमात द्वारा भेंट के रूप में प्राप्त किया गया था। यह वास्तव में तातारी महिलाओं की परंपरा थी जिसमें उन्हें महलों में बनाए गए विशेष आवासों में अपने सामग्री के साथ रखा गया था। यहां उनके नौकर-चाकर भी अलग-अलग से होते थे। ये महिलाएं महल में अपने बच्चों का पालन-पोषण करती थीं और अपने पुरुषों के साथ जश्न में शामिल होकर आनंद लेती थीं।

मुग़ल शासकों ने हिंदुस्तान में तैमूरी खानदान की इन परंपराओं को बनाए रखा इसके परिणामस्वरूप अकबर से लेकर अंतिम मुग़ल सम्राट के काल तक राजघराने की महिलाओं के लिए महल के लिए हरम के अंतर्गत पृथक-पृथक महल एवं विभिन्न खंडों का निर्माण किया गया।[4]

शाही हरम सामान्यतः बादशाह के कक्ष के पास स्थित होता था। विभिन्न महलों में शाही परिवार की महिलाएं अपने-अपने रुतबे के अनुसार रहती थीं। जो महिला जितनी बादशाह के निकट होती थी उसे उतना ही

अधिक महत्व और सुविधाएं प्राप्त होती थीं। बादशाह की ओर से उनकी जागीर और वजीफा जो एक बड़ी रकम होती थी निर्धारित कर दी जाती थी।

इसके साथ ही जो भी चीज़ वे मांगतीं उन्हें पूरी कर दिया जाता था। सम्राट भी उनके लिए बहुमूल्य वस्तुएं मंगवाता था और उन्हें संतुष्ट और खुश रखने की पूरी कोशिश करता था। मुग़ल शासक न केवल अपनी मलिकाओं के लिए सुंदर भवनों का निर्माण करवाते थे बल्कि अपनी शहजादियों के लिए भी पृथक एवं आकर्षक आवासों की व्यवस्था करते थेA

शाहजहाँ ने अपनी ज्येष्ठ पुत्री जहाँआरा के लिए आगरा के राजमहल परिसर में एक विशेष महल का निर्माण करवाया था। जो तीन मंजिला था। इस महल की दीवारों पर सुंदर चित्रकारी और पच्चकारी का काम किया गया था। जहाँआरा अपनी शाही ठाठ-बाट के साथ उस महल में रहती थीं। इस प्रकार शाही परिवार की महिलाओं को उनके रुतबे और महत्व के अनुसार हरम के भीतर अलग-अलग हिस्से दिए जाते थे।

1.2–मुगलकालीन हरम

मुगल बादशाह अपने हरम की महिलाओं के साथ शिकार पर भी जाते थे। इन शाही खेमों से कुछ दूरी पर नक्कारखाना के आगे दाहिने और बाएं घोड़े के अस्तबल हाथी चीता हिरण नील गाय शिकारी कुत्ते और जंगली भैंसे अलग-अलग अहाते में रखे जाते थे। इस प्रकार बादशाह जब सफर पर होते थे तो वह शान-शौकत के साथ रहते थे। जब वह खेमे में होते थे तो उनके और उनकी बेगमात के लाल खेमे आसपास के इलाकों से किसी ऊँचाई से नजर आते थे। जिनमें मुग़ल शासक और उनकी महिलाएँ बड़े लाव-लश्कर के साथ यात्रा करती थीं और उनके व्यक्तिगत आराम और सुविधा के लिए खेमों और डेरों का पूरा सामान पहले से भेजा जाता था ताकि जब वे गंतव्य स्थल पर पहुँचें तो वहां सब कुछ सजाया हुआ मिले और किसी चीज़ की कमी न हो।

मुगल शासक अपनी महिलाओं को अपने सैनिक अभियानों में साथ रखते थे। बाबर का अधिकांश समय **भारत में रणभूमि में ही बीता और ऐसी परिस्थितियों में उसकी पत्नियाँ महलों में आराम से नहीं रह सकती थीं** जबकि शासक भी उनकी सुरक्षा से पूरी तरह से अनभिज्ञ नहीं रह सकता था। इस स्थिति में सैनिक अभियानों के दौरान नारी भी शासक के साथ होती थीं।

हुमायूँ की बेगमात भी युद्ध के मैदान में उसके साथ रहती थीं। क्योंकि उसे अपने दो प्रमुख शत्रुओं बहादुर शाह और शेर शाह से हमेशा खतरा बना रहता था। चौसा के युद्ध के दौरान हुमायूँ की पहली पत्नी बीगा बेगम उसके साथ थीं। हुमायूँ की पराजय के बाद रणभूमि में भारी भगदड़ मच गई और सेना बिखर गई। हुमायूँ खुद संकट में फंसा और वह अपनी बेगमात को अपने साथ नहीं ले जा सका जिससे वे वहीं छूट गईं। अन्य महिलाओं के साथ बीगा बेगम शेर खाँ के पास पहुंचाई गईं।

शेर खाँ ने पूरी इज्जत के साथ हुमायूँ की बेगमात को खवास खाँ के साथ सुरक्षित रूप से हुमायूँ के पास भेज दिया। हुमायूँ की दो और पत्नियाँ चाँद बीबी और शाद बीबी बचाई नहीं जा सकीं और चौसा की हार के बाद वे गंगा में डूबकर निधन हो गए। जब हुमायूँ अपनी हुकूमत खोकर बल्ख बदख्शों और काबुल में भटक रहा था तब उसकी बेगमात उसके साथ थीं। हुमायूँ के भाई कामरान और अस्करी से संबंधों में खटास आने के दौरान वह सिन्ध में परेशानियों में घूम रहा था और इस समय उसकी जीवनसाथी हमीदा बानो बेगम उसके साथ थीं। जब हुमायूँ कोयटा के मशन्ग पहुँचा अस्करी ने उसके छोटे कारवाँ पर हमला करवा दिया। हुमायूँ ने अपनी पत्नी हमीदा बानो बेगम को घोड़े पर बैठाकर हमन्द की ओर भागने की कोशिश की जबकि उसने अपने डेढ़ वर्षीय बेटे अकबर को वहीं छोड़ दिया जिसे अस्करी ने अपने साथ ले लिया। हुमायूँ की एक अन्य पत्नी माह चूचक जो बैरम ख़ाँ की बहन थीं उन्हें काबुल में शत्रु शाह अबुल मआती ने मार डाला। इस प्रकार हुमायूँ की बेगमात युद्ध के समय हमेशा उसके साथ होती थीं।

जहाँगीर के शासनकाल में भी यह देखा गया कि उसके हरम की महिलाएँ रणभूमि में उसके साथ होती थीं विशेष रूप से नूरजहाँ बेगम उन्हें एक बार सेना का नेतृत्व करना पड़ा जब जहाँगीर कश्मीर से काबुल की यात्रा कर रहा था। उसकी सेना और उमरा नित्य की तरह उसके साथ थे।झेलम नदी पार करते समय विद्रोही महावत खाँ ने राजपूत सेना की मदद से जहाँगीर को बंदी बना लिया। नूरजहाँ ने साहस दिखाया और महावत की नज़रों से बचते हुए झेलम नदी पार की और "वह अपने भाई आसिफ खाँ से मिल गईं। तब उसने उमरा और सेना के सामने जोश से भरा भाषण दिया और उन्हें आरोपित किया कि उनके कारण शासक बंदी बना लिया गया और इस गलती को तुरंत सुधारना चाहिए। उसकी बात सुनकर सैनिकों में उत्साह पैदा हुआ और नूरजहाँ शहरयार की बेटी और उसकी आतका नदी पार करने लगी। इस दौरान शत्रु पक्ष से तीर बरसाए गए और शहरयार की बेटी की दाई के बाजू में एक तीर लग गया।

नूरजहाँ ने तीर निकालकर पट्टी लगा दी। जब सेना की स्थिति तलवारों भालों और तीरों से बिगड़ने लगी तो नूरजहाँ ने अपने पति के लिए हथियार सौंप दिए लेकिन इसके पीछे उसकी समझदारी थी ताकि जहाँगीर को सुरक्षित काबुल पहुंचाया जा सके। अब उसने कूटनीति का सहारा लिया और उमरा को रिश्वत और लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। महावत खाँ जो जहाँगीर को काबुल ले जा रहा था अचानक बदलते हुए हालात को समझ गया। अब उसे बचने का कोई रास्ता नजर नहीं आया तो उसने तुरंत जहाँगीर और नूरजहाँ को वहीं छोड़कर खुद लाहौर की ओर भाग लिया। इस प्रकार नूरजहाँ ने सही समय पर मोर्चा संभालते हुए शत्रु को पराजित किया और अपने पति को इस संकट से बाहर निकाला। यह उसका एक सराहनीय कदम था जिसने यह सिद्ध कर दिया कि बेगमात भी युद्ध में भाग लेने की क्षमता रखती

1.3–सल्तनतकालीन हरम

मुस्लिमों के आगमन के साथ स्त्रियों की सामाजिक स्थिति इस दौर में बदल गई। कुरान बताता है कि मुस्लिम महिलाओं को भी समाज में सम्मान मिला था। कुरान में यह कहा गया है& **"हे ईमान लाने वालों! तुम्हारे लिए यह उचित नहीं कि तुम महिलाओं को बलात्कारी तरीके से उनके अधिकारों से वंचित कर दो और यह भी उचित नहीं है कि उन्हें इस कारण रोका जाए कि जो कुछ तुमने उन्हें दिया है। उसका कुछ हिस्सा वापस ले लिया जाए। हां अगर वे खुले तौर पर अश्लील व्यवहार करें तो उस स्थिति में बात अलग है। इसके अलावा उनके साथ सद्भावना से पेश आओ। यदि वे तुम्हें अप्रिय लगें भी हो सकता है कि जो चीज तुम्हें नापसंद हो उसमें अल्लाह बहुत अच्छा कुछ उत्पन्न कर दे।"**

हिंदुओं का वर्णन करते हुए अलबेरूनी ने लिखा है सभी समस्याओं और संकटों के दौरान पुरुष अक्सर स्त्रियों से परामर्श लिया करते माबार में स्त्रियों के बारे में **बारबोसा लिखते हैं कि नायर जाति के लोग अपनी माताओं का अत्यधिक मान करते हैं और जो भी प्राप्त करते हैं उससे उनका भरण-पोषण करते हैं। वे अपनी बड़ी बहनों को सम्मान देते हैं और उन्हें माता के समान मानते हैं साथ ही वे उस जगह में प्रवेश नहीं करते जहाँ नवयुवतियाँ होती हैं। वे न तो उन्हें छूते हैं और न उनसे बात करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि इससे पाप का अवसर उत्पन्न हो सकता है। यह आदत उनके पूर्वजों की थी इसलिए वे स्त्रियों के प्रति आदर और सम्मान रखते थे**[A]

हालांकि स्त्रियाँ समाज में सम्मानित थीं लेकिन एक बेटी का जन्म परिवार में अशुभ माना जाता था। अमीर खुसरो अपनी कविता *लैला मजनू* में अपनी बेटी के जन्म पर गहरी निराशा व्यक्त करते हैं कहते हैं कि **"मैं कामना करता हूँ कि तुम पैदा ही नहीं होती और यदि जन्म लेना था तो बेटा होना बेहतर था।"** उनका मानना था कि भाग्यरेखा में कोई बदलाव नहीं कर सकता। भारतीय स्त्रियों के सामान्य जीवन में ऐसे कुछ समानताएँ थीं जो समकालीन समाज के सामान्य सामाजिक व्यवहार से मेल खाती थीं। **एक स्त्री खुद को इस प्रकार वर्णित करती है - "मैं एक कमजोर और कम बुद्धि वाली युवती हूँ........**

मनु एक अन्य स्थान पर लिखते हैं कि स्त्रियों को दिन-प्रतिदिन अपने परिवार के पुरुषों पर निर्भर रहना चाहिए और यदि वे किसी प्रकार के विषयासक्त होती हैं तो उन्हें केवल एक पुरुष के नियंत्रण में रहना चाहिए।[1] बाल्यावस्था में पिता यौवन में पति और वृद्धावस्था में पुत्र उसकी रक्षा करते हैं। मनु के अनुसार कोई महिला स्वतंत्र नहीं रह सकती। वह पिता और पति को निन्दनीय मानते हैं जो अपनी कन्या का विवाह समय पर नहीं करते और वह पुत्र निन्दनीय है जो अपनी माँ के विधवा होने पर उसकी देखभाल नहीं करता। मनु का मानना था कि महिलाओं को विशेष रूप से कुप्रवृत्तियों से बचाना चाहिए चाहे वे कितनी भी छोटी क्यों न हों क्योंकि यदि इन्हें रोका नहीं गया तो वे दोनों परिवारों के लिए दुख का कारण बन सकती हैं। **महिलाओं के कर्तव्यों का विचार करते हुए हुए यह भी जरूरी है कि पुरुषों को अपनी पत्नियों पर नियंत्रण बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए।** जो व्यक्ति अपनी पत्नी के प्रति सजग और चौकस रहता है वह न केवल अपनी संतानों की पवित्रता और चरित्र को बनाए रखता है बल्कि अपने परिवार खुद और अपनी श्रेष्ठता को भी सुनिश्चित करता है।

निष्कर्ष

हालांकि मनु ने स्त्रियों को हमेशा पराधीन स्थिति में रखा फिर भी उन्होंने समाज में उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान की दिशा में ध्यान आकर्षित किया। उनका कहना था कि पिताओं भाइयों पतियों और देवरों को स्त्रियों को सम्मान और सुशोभित रखना चाहिए। जहां स्त्रियों की प्रतिष्ठा होती है वहां देवता प्रसन्न होते हैं लेकिन जहां उनका सम्मान नहीं होता वहां किसी भी पवित्र संस्कार का फल नहीं मिलता। जहां स्त्रियाँ दुखी होती हैं वहां संपूर्ण परिवार का पतन हो जाता है लेकिन जहां वे सुखी होती हैं वहां परिवार सदा समृद्ध रहता है। उस घर में जहाँ स्त्रियों का सम्मान नहीं होता वह शापित होता है और पूरी तरह से नष्ट हो जाता है जैसे उस घर पर कोई जादू हो। इसलिए जो व्यक्ति अपने कल्याण की कामना करते हैं उन्हें अपनी स्त्रियों को तीज-त्योहारों और विशेष अवसरों पर आभूषण वस्त्र और स्वादिष्ट भोजन देकर उनका सम्मान करना चाहिए। ऐसे परिवार में जहाँ पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे से संतुष्ट होते हैं वहां निश्चित रूप से आनंद का वातावरण होता है।

सन्दर्भ ग्रथ सूची

1- नूरजहाँ भी मखाफी नाम से अपना कलाम लिखती थी खफीखां मुन्तखब-उल - लुबाब १ (अनु०) पृ० २७०-२७१ मआसिर-उल-उमरा २ खंड २ पृ० १०७८ शेर खान मरातुल ख्याल (फारसी) पृ० १२८

2- बज्म तैमूरिया (उर्दू) पृ० ४४७

3- लाहौरी बादशाहनामा २ (फारसी) पृ० ६२६

4- मखजन-उल-गराअब (फारसी पांडुलिपी) पृ० ३१२ ओ० पी० एल० बिहार एंड डिस्ट्रकट गजेटियर मुंगेर मैले १६२६ मैले १६२६ पृ० २४१-२४२

5- अली हसन खाँ सुबह-ए-गुलशन (फारसी मूल) पाठ भोपाल शाहजहाँ नामा १२६५ पृ० १२: फेयम्स ऑफ इंडियन विमेन सम्पादक माग्रेट मैकनिकॉल पृ० ७६

6- तजकिरतुल-शायरात, (फारसी) पृ० ६३४

7- वही

8- साकी मुस्तैद खान मआसिर-ए-आलमगीरी (अनुवाद) पृ० ३२२ मकालात-ए-शिबली (उर्दू) पृ० १०४: ग्रेट विमेन ऑफ इंडिया (सम्पादित) १६५३ पृ० ३८८

9- जर्नल पाकिस्तान हिस्टोरिकल सुसईटी अप्रैल १६६३ डॉ० अब्दुल्ला चगताई का लेख ख्वाजा अब्दुल समद पृ० ५६३

ଔ

छायावादी कवियों की शब्दावली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन

अश्वनी कुमार मिश्र*

शोध सार

छायावादी कवियों की शब्दावली का भाषावैज्ञानिक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि इस युग में 'शब्द' केवल अर्थ व्यक्त करने का माध्यम नहीं रहा, बल्कि वह संवेदना, प्रतीक और ध्वनि के स्तर पर बहुआयामी बन गया। प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा ने शब्दों को उनके पारंपरिक अर्थ-सीमाओं से मुक्त कर उन्हें नए अर्थ-संदर्भ और सांस्कृतिक गहराई प्रदान की। इन कवियों की भाषा में प्रकृति, दर्शन, राष्ट्र और अंतर्मन से जुड़े शब्द विशेष रूप से उभरकर आते हैं, जो मानवीय अनुभूतियों को सूक्ष्म रूप में व्यक्त करते हैं। छायावाद में लाक्षणिकता, व्यंजनात्मकता और ध्वन्यात्मकता के कारण शब्दों का अर्थ-विस्तार हुआ है। संस्कृतनिष्ठ, कोमल और संगीतात्मक शब्दावली के प्रयोग से खड़ी बोली को एक सशक्त काव्य-भाषा का रूप मिला। छायावादी शब्दावली न केवल भाषा की संरचना को समृद्ध करती है, बल्कि हिंदी काव्य को गहन संवेदनात्मक और कलात्मक ऊँचाई भी प्रदान करती है।

बीज शब्द : प्रकृति, सौंदर्य, प्रेम, वेदना, आत्मा, स्वप्न, रहस्य, करुणा, चेतना, अनुभूति

प्रस्तावना

छायावादी काव्य हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण युग है, जिसमें भाषा और शब्दावली को नवीन संवेदनात्मक और कलात्मक आयाम प्राप्त हुआ। इस शोध का उद्देश्य छायावादी कवियों की शब्द-संपदा का भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करना है। प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा की कृतियों में प्रयुक्त शब्द केवल अर्थ-प्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि भाव, प्रतीक और अनुभूति के सशक्त वाहक हैं। इनकी शब्दावली में प्रकृति, रहस्य, प्रेम और आत्मानुभूति के सूक्ष्म रूपों की अभिव्यक्ति मिलती है, जो काव्य को गहन संवेदनशीलता प्रदान करती है।

इस अध्ययन में शब्दों के अर्थ-विस्तार, ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता तथा व्यंजनात्मकता का विश्लेषण किया जाएगा, साथ ही यह भी देखा जाएगा कि किस प्रकार संस्कृतनिष्ठ एवं कोमल शब्दों के प्रयोग ने खड़ी बोली को काव्यात्मक गरिमा प्रदान की। अंततः यह शोध स्पष्ट करेगा कि छायावादी शब्दावली ने हिंदी काव्य-भाषा को न केवल समृद्ध बनाया, बल्कि उसे अभिव्यक्ति की नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

हिंदी शब्दसागर के अनुसार ' शब्द ' का अर्थ -

"वायु में होनेवाला वह कंप जो किसी पदार्थ पर आघात पड़ने के कारण अथवा स्वयं वायु पर आघात पड़ने के कारण उत्पन्न होकर कान या श्रवणेंद्रिय तक पहुँचता और उसमें एक विशेष प्रकार का क्षोभ उत्पन्न करता है। ध्वनि। आवाज ।"[1] शब्दसागर में 'शब्द ' का पर्यायवाची बताया गया है -

" निनाद । रव । राव । निर्घोष । नाद । घोष । निनद । ध्वनि । ध्वान । स्वन । स्वान । निर्हाद । आरव । आराव । निःस्वन । निःस्वान । संरव । संराव । विराव ।"[2] 'शब्द' भारतीय और पाश्चात्य भाषा-चिंतन की एक केन्द्रीय और आधारभूत अवधारणा है। भाषा की संरचना में इसका महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि रूप-विज्ञान और व्याकरण की संपूर्ण व्यवस्था इसी पर आधारित होती है। विभिन्न वैयाकरणों और भाषाविदों ने 'शब्द' को ऐसी इकाई के रूप में माना है, जिसके माध्यम से अर्थ व्यक्त होता है। इस प्रकार, वह ध्वनि या रूप

* शोधार्थी, हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
neet015bhu@gmail.com, 8601728724

जो किसी निश्चित अर्थ का संकेत दे, 'शब्द' कहलाता है।"भाषा का प्रयोग मन में आई हुई भावनाओं को प्रदर्शित करने के लिए होता है। इससे यह समझना कि संसार की किसी भाषा द्वारा मनुष्य के हृदय के भीतर की सब भावनाएँ ज्यों की त्यों बाहरी सृष्टि में लाई जा सकती हैं ठीक नहीं। किन्तु किसी भाषा की श्रेष्ठता निश्चित करने के लिए यह विचार करना आवश्यक होता है कि वह अपने इस कार्य में कहाँ तक समर्थ है अर्थात् हृदयस्थित भावनाओं का कितना अंश वह प्रतिबिंबित करके झलका सकती है। अभी तक मानव कल्पना में, ऐसे ऐसे रहस्य छिपे पड़े हैं जिनको प्रकाशित करने के लिए कोर्ड भाषा ही नहीं बनी है। यद्यपि विचारों की सृष्टि भाषा से पहिले की है पर आगे चलकर जब भाषा खूब पुष्ट हो जाती है तब वह विचार करने का उन्नत ढंग बतलाने लगती है। जो जातियाँ हमसे उन्नत हैं उनके विषय में यह अवश्य समझना चाहिए कि उनके विचार करने का ढंग हमसे उन्नत है।"[3]

भाषा का अस्तित्व समाज से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। इसका निर्माण, विस्तार और उपयोग सभी सामाजिक जीवन के भीतर ही घटित होते हैं। इसी कारण 'शब्द' का महत्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि वही विचारों को रूप देने और उन्हें व्यक्त करने का प्रमुख साधन है। भाषा चाहे बोली जाए या लिखी जाए, दोनों ही रूपों में शब्द ही उसकी आधारभूत इकाई बने रहते हैं। इस दृष्टि से भाषा सामाजिक अनुभवों से निर्मित अभिव्यक्ति का माध्यम है, और उसकी संरचना में 'शब्द' का स्थान केंद्रीय और अनिवार्य है। अतः 'शब्द' को ऐसी सार्थक ध्वनि या रूप के रूप में ग्रहण किया जाता है, जो सामान्य जीवन में किसी वस्तु, भाव या विचार का बोध कराता है।"आधुनिक परिवर्तनशील समाज-व्यवस्था और विचार-जगत् में छायावाद भारतीय आध्यात्मिकता की, नवीन परिस्थिति के अनुरूप, स्थापना करता है।"[4] चूंकि छायावाद अपने समय की परिस्थिति के अनुरूप स्थापना करता है तो अभीष्ट समय के अनुरूप भाषा भी चुनता है।

छायावाद हिंदी साहित्य का वह उत्कर्ष काल है जहाँ भारतेन्दु युग की 'उलझन' और द्विवेदी युग की 'इतिवृत्तात्मकता' से मुक्त होकर हिंदी कविता ने अपनी आत्मा की पहचान की। यदि द्विवेदी युग भाषा के संस्कार और व्याकरणिक अनुशासन का काल था, तो छायावाद उसी भाषा के 'हृदय' और 'सौंदर्य' के उद्घाटन का युग है। इस युग में हिंदी केवल खड़ी बोली नहीं रही, बल्कि वह 'काव्य-भाषा' के रूप में प्रतिष्ठित हुई, जिसमें सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करने की अद्भुत क्षमता थी।

छायावाद के आगमन के साथ हिंदी साहित्य में एक ऐसी वैयक्तिकता और सूक्ष्मता का समावेश हुआ, जिसने जड़ीभूत हो चुकी भाषा को गतिशीलता प्रदान की। भारतेन्दु युग ने जिसे बोलना सिखाया और द्विवेदी युग ने जिसे चलना सिखाया, छायावाद ने उसी हिंदी को नृत्य की थिरकन और संगीत की लय दी। इस काल में भाषा केवल सूचना का माध्यम नहीं रही, बल्कि वह उपमाओं, प्रतीकों और रूपकों के माध्यम से 'बिम्ब' गढ़ने लगी।

आचार्य शुक्ल के शब्दों में, "अभ्यंतर प्रभावसाम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ और प्रचुर विकास छायावाद की काव्यशैली की असली विशेषता है।"[5]

छायावादी कवियों ने संस्कृत की कोमल-कांत पदावली का सहारा लेकर भाषा को वह माधुर्य और सौकुमार्य प्रदान किया, जिसकी आकांक्षा पूर्ववर्ती युगों में की जा रही थी। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी ने भाषा को स्थूलता से निकालकर सूक्ष्मता की ओर मोड़ा। यहाँ शब्द केवल अर्थ नहीं देते थे, बल्कि वे एक विशेष 'ध्वनि' और 'वातावरण' का सृजन करते थे। इस काल की भाषा में लाक्षणिकता का जो पुट मिलता है, उसने हिंदी को विश्व-साहित्य के समकक्ष ला खड़ा किया।

जयशंकर प्रसाद ने जहाँ भाषा को दार्शनिक गहराई और गांभीर्य दिया, वहीं सुमित्रानंदन पंत ने उसे 'प्रकृति के सुकुमार संगीत' से सराबोर कर दिया। निराला ने छंदों के बंधन तोड़कर भाषा को एक नया 'पौरुष

और ओज' प्रदान किया, जिससे भाषा की असीमित संभावनाएँ उजागर हुईं। महादेवी की भाषा में वेदना की जो तरलता है, उसने खड़ी बोली को ब्रजभाषा जैसी कोमलता दी।

यह विद्रोह केवल विषय-वस्तु में नहीं, बल्कि भाषा के स्तर पर भी था। द्विवेदी युगीन भाषा जहाँ 'गद्यात्मक' और 'उपदेशात्मक' थी, वहीं छायावादी भाषा 'चित्रात्मक' और 'संगीतात्मक' हो गई। इन कवियों ने शब्दों को नए अर्थ-संदर्भ दिए और भाषा को देश-काल की सीमाओं से परे मानवीय संवेदनाओं का सार्वभौमिक माध्यम बना दिया।

•जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद ने हिंदी कविता को उस संकुचित दायरे से बाहर निकाला जहाँ वह केवल इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता तक सीमित थी। उन्होंने खड़ी बोली को वह दार्शनिक गहराई और भावप्रवण तरलता प्रदान की, जिसकी कल्पना पहले कभी नहीं की गई थी। उनकी लेखनी ने हिंदी को केवल एक संपर्क भाषा से ऊपर उठाकर एक अत्यंत प्रौढ़ काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया।इसके लिए प्रसाद जी ने अपनी रचनाओं में तत्सम प्रधान और सांस्कृतिक शब्दावली का ऐसा मणिकांचन संयोग किया, जिसने भाषा को गरिमा और लालित्य दोनों प्रदान किए। उनकी शब्दावली में जहाँ एक ओर वेदों और उपनिषदों का गांभीर्य था, वहीं दूसरी ओर मानवीय संवेदनाओं की कोमलता भी थी। उन्होंने भाषा को 'शब्दों के जंगल' से निकालकर उसे बिम्बों और प्रतीकों के लोक में स्थापित किया, जिससे कविता का प्रवाह किसी स्वच्छंद निर्झर की भाँति स्वतः स्फूर्त और प्राणवान हो उठा। 'कामायनी' जैसी कालजयी कृति इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, जहाँ भाषा केवल वर्णन नहीं करती, बल्कि अनुभूतियों का साक्षात्कार कराती है।

•प्रकृति संबंधी

प्रसाद की प्रकृति 'चेतनामयी' और 'रहस्यात्मक' है। उन्होंने प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन रूपों को सूक्ष्म मानवीय संवेदनाओं (जैसे–करुणा, लज्जा, आनंद, श्रद्धा) के साथ एकाकार कर दिया है।

ऊषा (उदा०) – "बीती विभावरी जागरी, अम्बर पनघट में डुबो रही तारा-घट ऊषा नागरी।"[6]

(यहाँ ऊषा एक चतुर स्त्री के रूप में आलम्बन है)

लहर (उदा०) – "उठ-उठ री लघु-लघु लहर! करुणा की नव अंगड़ाई सी।"[7]

(लहर यहाँ मानवीय करुणा का प्रतीक है)

चंद्रिका (उदा०) – "बिखरी थी चंद्रिका अलक-वृंद में, जैसे हृदय-नभ में प्रकाश की रेखा।"[8]

जलद (उदा०) –"गरल जलद की खड़ी झड़ी में
बूँदे निज संसृति रचतीं।"[9]

जलधि (उदा.)-"उमड़ रहा था देव-सुखों पर,दु:ख-जलधि का नाद अपार।"[10]

ऊषा (उदा.) - "उषा सुनहले तीर बरसती,
जय-लक्ष्मी-सी उदित हुई"[11]

•दर्शन सम्बन्धी -

जयशंकर प्रसाद के काव्य में शैव दर्शन (आनंदवाद), अद्वैत और मानवतावाद के दर्शन यत्र-तत्र स्थान पा गए हैं। इनमें प्रमुख शब्द और पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

समन्वय (उदा.)- "समन्वय उसका करें समस्त,विजयिनी मानवता हो जाए।"[12]

ईश (उदा.) - "ईश का वह रहस्य वरदान,
कभी मत इसको जाओ"[13]

माया (उदा.) - "वैसी ही माया में लिपटी,
अधरों पर उँगली धरे हुए"[14]

•एतिहासिक जगह के नाम -

प्रसाद की कविताओं में ऐतिहासिक जगहें केवल भूगोल नहीं, बल्कि राष्ट्रीय गौरव और सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक हैं। ये स्थान अतीत की वीरता और वर्तमान की प्रेरणा को जोड़ते हैं।

मेवाड़ (उदा.) - "गौरव की काया पड़ी माया है प्रताप की
वही मेवाड़"[15]

पेशाला (उदा.) "पेशोला की उर्मियाँ है शांत, घनी छाया में"[16]

पंचनद (उदा.) "वीर भूमि पंचनद वीरता से रिक्त नहीं..." [17]

•सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने हिंदी कविता को उस परंपरागत केंचुली से मुक्त किया जहाँ वह छंदों की दासता और कोमलकांत पदावली के मोह में बँधी थी। उन्होंने काव्य को वह पौरुषपूर्ण वेग और वज्र-गंभीर स्वर प्रदान किया, जिसने जड़ता को तोड़कर चेतना का नया क्षितिज खोला। निराला की लेखनी ने खड़ी बोली को केवल वर्णनात्मकता से उबारकर उसे 'शक्ति-काव्य' की उस पराकाष्ठा पर पहुँचाया, जहाँ भाषा स्वयं एक जीवंत संघर्ष बन गई।

इसके लिए निराला ने अपनी रचनाओं में ओजपूर्ण संस्कृतनिष्ठ शब्दावली और ठेठ जनभाषा के मुहावरों का ऐसा अप्रत्याशित 'अद्वैत' रचा, जिसने कविता को आभिजात्य और लोक-संवेदना दोनों के धरातल पर प्रतिष्ठित किया। उनकी शब्दावली में जहाँ एक ओर 'राम की शक्ति-पूजा' का सामासिक गांभीर्य और शास्त्रीय अनुशासन था, वहीं दूसरी ओर 'कुकुरमुत्ता' की बेबाक तार्किकता और विद्रोही तेवर भी थे। उन्होंने कविता को 'छंद के बंधनों' से मुक्त कर 'मुक्त छंद' के उस 'रबड़' या 'केंचुवा' प्रवाह में ढाला, जिससे भावों की अभिव्यक्ति किसी भी कृत्रिम अवरोध के बिना सीधे अंतर्मन से टकराने लगी। 'सरोज स्मृति' और 'तुलसीदास' जैसी कालजयी कृतियाँ इस बात का साक्ष्य हैं कि निराला के यहाँ भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि आत्म-साक्षात्कार और सामाजिक क्रांति का प्रखर अस्त्र है।

•प्रकृति संबंधी -

संध्या सुंदरी (उदा.) "मेघमय आसमान से उतर रही है,वह संध्या-सुंदरी परी-सी"[18]

किरण/इंद्रधनुष (उदा.)"किरण-तूलिकाओं से अंकित
इंद्रधनुष के सप्तक, तार;"[19]

जलज (उदा.) "क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से,सदा छलकता नीर"[20]

निशा (उदा.) "है अमानिशा; उगलता गगन घन अंधकार;
खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध है पवन-चार "[21]

•दार्शनिक और आध्यात्मिक शब्द

अंत/अनंत (उदा.)"आओ, एक पथ के पथिक-से,प्रिय, अंत और अनंत के,"[22]

निराकार (उदा.)"शृंगार, रहा जो निराकार,रस कविता में उच्छ्वसित-धार"[23]

ऊर्ध्व (उदा.)"उस मानस ऊर्ध्व देश में भी,ज्यों राहु-ग्रस्त आभा रवि की।"[24]

•सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत ने हिंदी कविता को ब्रजभाषा के पुराने परिधानों से मुक्त कर खड़ी बोली को वह 'नजाकत और संगीतात्मकता' प्रदान की, जिसकी वह लंबे समय से प्रतीक्षा कर रही थी। उन्होंने प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य को शब्दों में बांधकर भाषा को चित्रोपम बनाया और उसे 'प्रकृति के सुकुमार वैभव' से अलंकृत किया। जहाँ निराला के यहाँ 'शक्ति-काव्य' का गर्जन था, वहीं पंत ने अपनी लेखनी से 'पल्लव' के माधुर्य और 'ग्राम्या' के यथार्थ का ऐसा सेतु निर्मित किया, जिसने काव्य को आभिजात्य सौंदर्य से निकालकर जन-चेतना और फिर

अरविंद दर्शन की आध्यात्मिक ऊंचाइयों तक पहुँचाया। उनका काव्य शिल्प केवल शब्द-चयन नहीं, बल्कि सौंदर्य और वैचारिकता का एक ऐसा 'स्वर्ण-विहान' है, जिसने हिंदी कविता को नई सुकुमारता और वैश्विक दृष्टि प्रदान की।

•प्रकृति संबंधित

हरियाली (उदा.) "हँसमुख हरियाली हिम-आतप,सुख से अलसाए-से सोए"[25]

आडू/नींबू/ दाड़िम (उदा.) "फूले आड़ू, नींबू, दाड़िम,
आलू, गोभी, बैंगन, मूली!"[26]

पर्वत (उदा.) " पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश,पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।" [27]

•देशप्रेम से जुड़े शब्द

भारत (उदाहरण)"जय जय भारत, जय आभा रत
जय जन राष्ट्र विधाता!"[28]

स्वदेश (उदा.)"सेवक पालक शोषित जन का,रक्षक मैं स्वदेश के धन का,कातो हे, काटो तन मन का"[29]

जननी जन्मभूमि (उदा.)"जननी जन्मभूमि प्रिय अपनी, जो स्वर्गादपि चिर गरीयसी!जिसका गौरव भाल हिमाचल,"[30]

भारतमाता (उदा.)"भारतमाता,ग्रामवासिनी।खेतों में फैला है श्यामल"[31]

चरखा (उदा.)"घूम, घूम, भ्रम भ्रम रे चरखा, कहता : 'मैं जन का परम सखा"[32]

•महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा ने हिंदी कविता को उस स्थूल जगत से बाहर निकालकर 'अंतर्मन के एकांत' में प्रतिष्ठित किया, जहाँ शब्द केवल सूचना नहीं बल्कि संवेदना की सूक्ष्म लहर बन गए। उन्होंने खड़ी बोली को वह 'संगीतात्मक आर्द्रता' और करुणा का गांभीर्य प्रदान किया, जिसने वेदना को व्यक्तिगत विलाप से ऊपर उठाकर एक सार्वभौमिक दार्शनिक सौंदर्य में बदल दिया। उनकी भाषा में तत्सम शब्दावली का विन्यास किसी बोझिल पांडित्य की तरह नहीं, बल्कि 'मृण्मय माधुर्य' की तरह फूटता है, जहाँ दीपक और बदली जैसे प्रतीक केवल उपमान नहीं बल्कि आत्मा के गहन रहस्यों के जीवंत साक्षात्कार बन जाते हैं। 'यामा' की कविताओं में उनकी लेखनी ने भाषा को वह तरलता दी है, जहाँ शब्द स्वयं को मिटाकर केवल एक दिव्य और असीम संगीत को शेष रहने देते हैं।

•प्रकृति

खेत/नदी - (उदा.)" खेतों से फिर दाना लाती,
नदियों से भर लाती पानी।"[33]

नभ (उदा.) "नभ कहता नयनों में बस रज बहती प्राण समा ले !"[34]

गर्जन (उदा.) "गर्जन में मधु-लय भर बोले, झंझा पर निधियाँ धर डोले"[35]

•निज प्रेम

मेरा (उदा.)"निज बोध से संबंधित ,विहंगम-मधुर स्वर तेरे, मदिर हर तार है मेरा !"[36]

अपने (उदा.)"राग में अपने कहो किसको न पार बुला चुकी हूँ"[37]

उर (उदा.)"एक ही उर में पले पथ एक से दोनों चले हैं"[38]

मुझे (उदा.) "हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन ! अगरु धूम-सी साँस सुधि-गन्ध-सुरभित"[39]

अकेला(उदा.)"पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला"[40]

"छायावाद की साहित्य-शैली में एक नई दिशा का आभास महादेवी जी के काव्य-क्षेत्र में प्रवेश करने पर प्राप्त हुआ। उनका काव्य पूर्णतः रहस्योन्मुखी और ऐकांतिक है। छायावाद की सामान्य काव्य-शैली से उनकी

पृथकता स्वीकार करनी होगी। इसके पश्चात् बच्चन जी का नया काव्य-वाद हिंदी के क्षेत्र में आया। इसी समय छायावादी काव्यशैली के कृतिपय अनुयायिओं ने 'यथार्थवादी' काव्य-प्रयोग आरंभ किए, जिनमें पंत जी भी एक प्रमुख प्रयोक्ता थे। चित्रण शैली और प्रेरणा भूमि दोनों में पूर्ववर्ती काव्य की अपेक्षा इनमें पर्याप्त अंतर दिखाई दिया।"41

छायावाद ने हिंदी भाषा को उसकी जड़ता से मुक्त कर एक ऐसी पारभासी सूक्ष्मता प्रदान की, जहाँ शब्द केवल अर्थ के वाहक न रहकर संवेदना के जीवंत बिम्ब बन गए। प्रसाद की दार्शनिक गरिमा, निराला का पौरुषपूर्ण विद्रोह, पंत का सुकुमार प्रकृति-संगीत और महादेवी की रहस्यात्मक वेदना ने मिलकर खड़ी बोली को वह संस्कार दिया, जिससे वह स्थूल उपदेशात्मकता से ऊपर उठकर 'हृदय की मुक्ति' का माध्यम बनी। इस युग में भाषा ने पहली बार अपनी आभ्यांतरिक शक्ति को पहचाना और संस्कृत की कोमल-कांत पदावली के साथ मिलकर एक ऐसी सांस्कृतिक अस्मिता गढ़ी, जिसने हिंदी काव्य को वैश्विक क्षितिज पर प्रतिष्ठित कर दिया।

छायावादी कवियों ने शब्दों को नए अर्थ-संदर्भों में ढालकर उनमें एक विशेष प्रकार की ध्वन्यात्मकता और लाक्षणिक प्रगल्भता उत्पन्न की। यहाँ प्रकृति केवल जड़ वस्तु नहीं बल्कि मानवीय चेतना का विस्तार है, जहाँ 'ऊषा' नागरी बनती है और 'लहर' करुणा की अंगड़ाई। इन कवियों ने भाषा के शिल्प और संवेदना के बीच का द्वैत मिटाकर उसे 'बिम्ब-प्रधान' बनाया, जिससे पाठक केवल शब्द नहीं पढ़ता, बल्कि अनुभूतियों का साक्षात्कार करता है। "हिंदी कविता की पूरी परंपरा का अनुशीलन करते हुए जैसे ही कोई पाठक छायावाद की सीमा में प्रवेश करता है, ये कविताएँ तुरंत अपनी आत्मीयता से उसे आकृष्ट कर लेती हैं। यहाँ वह देखता है कि कवि निर्वैयक्तिकता का सारा आवरण उतारकर एक आत्मीय की भाँति अत्यंत निजी ढंग से बातें कर रहा है। "42 यह आत्मीयता पाठकों को शब्दों के उस पार ले जाती है, जहाँ 'स्व' का विस्तार 'सर्व' में हो जाता है। यहाँ कवि का निजी सुख-दुख समूची मानवता की धड़कन बनकर गूँजता है। उदाहरण स्वरूप देखें तो निराला की अपनी पुत्री के शोक में निकले शब्द हृदय को झकझोर देते हैं।

भाषाविज्ञान की दृष्टि से 'शब्द' केवल ध्वनि मात्र नहीं, बल्कि वायु का वह कंप है जो श्रवणेंद्रिय में क्षोभ उत्पन्न कर अर्थ का संचार करता है। द्विवेदी युगीन कविता जहाँ इतिवृत्तात्मकता और व्याकरणिक शुद्धता के अनुशासन में बँधी थी, वहीं छायावाद ने भाषा को उस जड़ता से मुक्त कर 'काव्य-भाषा' के रूप में प्रतिष्ठित किया। छायावादी कवियों के लिए शब्द केवल सूचना का माध्यम नहीं रहे, बल्कि वे सूक्ष्म भावनाओं को प्रतिबिंबित करने वाले ऐसे सशक्त उपकरण बन गए, जो हृदय के उन रहस्यों को भी वाणी देने लगे जिनके लिए पूर्व में कोई भाषा ही नहीं बनी थी। यहाँ शब्द और अर्थ का संबंध केवल स्वाभाविक न रहकर प्रतीकात्मक हो जाता है, जहाँ एक-एक शब्द अपने भीतर नवीन अर्थ-स्तरों और सांस्कृतिक चेतना को समेटे रहता है।

छायावादी शब्दावली के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि यहाँ 'अर्थ-संकोच' की अपेक्षा 'अर्थ-विस्तार' की प्रवृत्ति अत्यंत प्रभावी है। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी ने शब्दों को उनके पारंपरिक भौतिक और कोशीय अर्थों से ऊपर उठाकर आध्यात्मिक एवं दार्शनिक गरिमा प्रदान की है। जहाँ 'चेतना', 'अमृत', 'लय' और 'शून्य' जैसे शब्द अपनी स्थूलता त्यागकर रहस्यात्मक आयाम ग्रहण करते हैं, वहीं 'ऊषा', 'लहर' और 'चंद्रिका' जैसे प्रकृति-बोधक शब्द मानवीय संवेदनाओं (लज्जा, करुणा, श्रद्धा) के जीवंत प्रतीक बन जाते हैं।छायावाद में केवल वर्ण्य-विषय ही नहीं बदला, बल्कि पूरी अभिव्यक्ति पद्धति बदल गई, जिससे खड़ी बोली में वह माधुर्य और सौकुमार्य आ गया जो इसे विश्व-साहित्य के समकक्ष खड़ा करता है।

ध्वनि-विज्ञान के स्तर पर छायावादी कवियों ने आंतरिक संगीत को उभारने के लिए सुर, लय और सामासिक शब्दावली का अद्वितीय प्रयोग किया है। निराला ने जहाँ भाषा को छंदों के बंधन से मुक्त कर उसे 'शक्ति-काव्य' का पौरुषपूर्ण वेग दिया, वहीं उनकी शब्दावली में ओजपूर्ण संस्कृतनिष्ठता और जनभाषा के मुहावरों का 'अद्वैत' मिलता है। सुमित्रानंदन पंत ने प्रकृति के सुकुमार वैभव को शब्दों में बाँधकर भाषा को

'चित्र' बनाया, जिससे वह 'प्रकृति का सुकुमार संगीत' बन गई। जयशंकर प्रसाद के यहाँ ऐतिहासिक और दार्शनिक शब्दावली राष्ट्रीय गौरव और 'आनंदवाद' के समन्वय का माध्यम बनी। इन विभिन्न प्रयोगों ने सिद्ध किया कि छायावादी भाषा केवल बाह्य जगत का वर्णन नहीं, बल्कि अंतर्मन की अनुभूतियों का साक्षात्कार है।

छायावादी शब्दावली का अध्ययन समाज और आधुनिक विचार-जगत् से इसके अविच्छिन्न संबंध को उजागर करता है। महादेवी वर्मा ने खड़ी बोली को वह 'संगीतात्मक आर्द्रता' दी, जहाँ 'दीपक' और 'बदली' जैसे शब्द व्यक्तिगत वेदना को सार्वभौमिक दार्शनिक सौंदर्य में बदल देते हैं। छायावाद 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' था, जो भाषा के स्तर पर गद्यात्मकता से चित्रात्मकता की ओर संक्रमण है।

निष्कर्षतः, छायावादी शब्दावली का भाषावैज्ञानिक अध्ययन उस रचनात्मक दृष्टि की पहचान है जो भाषा को स्थूल भूगोल से निकालकर वैश्विक मानवीय संवेदना का शाश्वत माध्यम बनाती है।छायावाद ने हिंदी शब्द-सामर्थ्य को वह विराट विस्तार दिया, जो आज भी समकालीन साहित्य की आधारभूमि और प्रेरणा का अक्षय स्रोत बना हुआ है।

संदर्भ -

1. दास, श्यामसुंदर. हिंदी शब्दसागर (पृ. 4691).
https://dsal.uchicago.edu/cgi-bin/app/dasa-hindi_query.py?qs=%E0%A4%B6%E0%A4%AC%E0%A5%8D%E0%A4%A6&searchhws=yes&matchtype=exact
2. दास, श्यामसुंदर. हिंदी शब्दसागर (पृ. 4691).
3. शुक्ल, रामचंद्र. भाषा, साहित्य और समाज विमर्श। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली (भाग 4, सम्पा. ओमप्रकाश सिंह)। https://sl1nk.com/2avvfg3
4. वाजपेयी, नंददुलारे. (2007). आधुनिक साहित्य (पृ. 317). भारती भंडार लीडर प्रेस।
5. शुक्ल, रामचंद्र. (2015-16). हिंदी साहित्य का इतिहास (पृ. 446). ग्रीन लीफ पब्लिकेशन।
6. प्रसाद, जयशंकर. (2003). संपूर्ण काव्य (पृ. 128). चिंतन प्रकाशन।
7. प्रसाद, जयशंकर. (2003). संपूर्ण काव्य (पृ. 121). चिंतन प्रकाशन।
8. प्रसाद, जयशंकर. (1958). कामायनी (पृ. 21). भारती-भंडार।
9. प्रसाद, जयशंकर. कामायनी (चिंता सर्ग)।
https://kavitakosh.org//kk/%E0%A4%9A%E0%A4%BF%E0%A4%82%E0%A4%A4%E0%A4%BE_/%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%97%E0%A5%A8_/%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%AF%E0%A4%A8%E0%A5%80/%E0%A4%9C%E0%A4%AF%E0%A4%B6%E0%A4%82%E0%A4%95%E0%A4%B0%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%A6
10. प्रसाद, जयशंकर. (1958). कामायनी (पृ. 1). भारती-भंडार।
11. प्रसाद, जयशंकर. (1958). कामायनी (पृ. 21). भारती-भंडार।
12. प्रसाद, जयशंकर. (1958). कामायनी (पृ. 43). भारती-भंडार।
13. प्रसाद, जयशंकर. (1958). कामायनी (पृ. 43). भारती-भंडार।
14. प्रसाद, जयशंकर. (1958). कामायनी (पृ. 95). भारती-भंडार।
15. प्रसाद, जयशंकर. (2010). जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली (काव्य खंड-4, सम्पा. सत्यप्रकाश मिश्र) (पृ. 379). लोकभारती प्रकाशन।
16. प्रसाद, जयशंकर. (2010). जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली (काव्य खंड-4, सम्पा. सत्यप्रकाश मिश्र) (पृ. 379). लोकभारती प्रकाशन।
17. प्रसाद, जयशंकर. शेरसिंह का शस्त्र समर्पण, लहर।https://freeshort.info/CtsjLi
18. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. (2010). निराला संचयिता (सम्पा. रमेशचंद्र शाह) (पृ. 43). वाणी प्रकाशन।

19. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. (2010). निराला संचयिता (सम्पा. रमेशचंद्र शाह) (पृ. 46). वाणी प्रकाशन।
20. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. (2010). निराला संचयिता (सम्पा. रमेशचंद्र शाह) (पृ. 46). वाणी प्रकाशन।
21. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. (2010). निराला संचयिता (सम्पा. रमेशचंद्र शाह) (पृ. 97). वाणी प्रकाशन।
22. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. (2010). निराला संचयिता (सम्पा. रमेशचंद्र शाह) (पृ. 53). वाणी प्रकाशन।
23. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. (2022). अंतरा (भाग-2) (पृ. 10). एनसीईआरटी।
24. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. (2010). निराला संचयिता (सम्पा. रमेशचंद्र शाह) (पृ. 62). वाणी प्रकाशन।
25. पंत, सुमित्रानंदन. (2022). क्षितिज (भाग-1) (पृ. 93). एनसीईआरटी।
26. पंत, सुमित्रानंदन. (2022). क्षितिज (भाग-1) (पृ. 93). एनसीईआरटी।
27. पंत, सुमित्रानंदन. (2022). स्पर्श (भाग-2) (पृ. 22). एनसीईआरटी।
28. पंत, सुमित्रानंदन. (2006). स्वतंत्रता पुकारती (सम्पा. नंद किशोर नवल) (पृ. 251). साहित्य अकादेमी।
29. पंत, सुमित्रानंदन. (2006). स्वतंत्रता पुकारती (सम्पा. नंद किशोर नवल) (पृ. 252). साहित्य अकादेमी।
30. पंत, सुमित्रानंदन. (2006). स्वतंत्रता पुकारती (सम्पा. नंद किशोर नवल) (पृ. 258). साहित्य अकादेमी।
31. पंत, सुमित्रानंदन. (2006). स्वतंत्रता पुकारती (सम्पा. नंद किशोर नवल) (पृ. 253). साहित्य अकादेमी।
32. पंत, सुमित्रानंदन. (2006). स्वतंत्रता पुकारती (सम्पा. नंद किशोर नवल) (पृ. 252). साहित्य अकादेमी।
33. वर्मा, महादेवी. (2022). वीणा (पृ. 25). एनसीईआरटी।
34. वर्मा, महादेवी. (2008). दीपशिखा (पृ. 57). साहित्य सहकार न्यास, प्रयाग।
35. वर्मा, महादेवी. (2008). दीपशिखा (पृ. 57). साहित्य सहकार न्यास, प्रयाग।
36. वर्मा, महादेवी. (2008). दीपशिखा (पृ. 30). साहित्य सहकार न्यास, प्रयाग।
37. वर्मा, महादेवी. (2008). दीपशिखा (पृ. 54). साहित्य सहकार न्यास, प्रयाग।
38. वर्मा, महादेवी. (2008). दीपशिखा (पृ. 54). साहित्य सहकार न्यास, प्रयाग।
39. वर्मा, महादेवी. (2008). दीपशिखा (पृ. 53). साहित्य सहकार न्यास, प्रयाग।
40. वर्मा, महादेवी. (2008). दीपशिखा (पृ. 53). साहित्य सहकार न्यास, प्रयाग।
41. वाजपेयी, नंददुलारे. (2007). आधुनिक साहित्य (पृ. 317). भारती भंडार लीडर प्रेस।
42. सिंह, नामवर. (2003). छायावाद (पृ. 18). राजकमल प्रकाशन।

1857 के विद्रोह में पाण्डे गणपत राय का नेतृत्व और योगदान

डॉ. कन्हैया प्रसाद सिन्हा*

सार–

मेरा यह अध्ययन ''1857 के विद्रोह में पाण्डे गणपत राय का नेतृत्व और योगदान''है। 1857 का विद्रोह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का प्रारंभिक और महत्वपूर्ण चरण था, जिसने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध व्यापक जन–असंतोष को उजागर किया। छोटानागपुर क्षेत्र में यह विद्रोह केवल सैनिक विद्रोह तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें स्थानीय जमींदारों, किसानों और आदिवासी समुदायों की सक्रिय भागीदारी रही। पाण्डे गणपत राय इस क्षेत्र के प्रमुख नेताओं में से एक थे, जिन्होंने ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव के साथ मिलकर विद्रोह का नेतृत्व किया। इस अध्ययन में यह दर्शाया गया है कि पाण्डे गणपत राय ने न केवल सैन्य दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, बल्कि उन्होंने जन–संगठन, रणनीति निर्माण और विद्रोह के विस्तार में भी योगदान दिया। उन्होंने आदिवासी समाज और स्थानीय जनता को संगठित कर इस आंदोलन को जन–आधारित स्वरूप प्रदान किया। यद्यपि यह विद्रोह अंततः असफल रहा, परंतु इसका ऐतिहासिक महत्व अत्यंत गहरा है। इसने स्वतंत्रता की चेतना को सुदृढ़ किया और आगे के आंदोलनों के लिए प्रेरणा प्रदान की। यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि पाण्डे गणपत राय का योगदान 1857 के विद्रोह और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

मूल शब्द– 1857 का विद्रोह, पाण्डे गणपत राय, छोटानागपुर, झारखंड, औपनिवेशिक शोषण, स्वतंत्रता संग्राम, एवं जन–आंदोलन।

1857 का विद्रोह भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है, जिसे "प्रथम स्वतंत्रता संग्राम" के रूप में जाना जाता है। यह विद्रोह केवल सैनिक असंतोष का परिणाम नहीं था, बल्कि यह व्यापक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक असंतोष की अभिव्यक्ति था। इस विद्रोह ने अंग्रेजी शासन की नींव को हिला दिया और भारतीय जनता में स्वतंत्रता की चेतना को जागृत किया। 1857 के विद्रोह और विशेष रूप से छोटानागपुर क्षेत्र में पाण्डे गणपत राय की भूमिका को लेकर इतिहास लेखन में एक नया दृष्टिकोण विकसित हुआ है। इस अवधि के अध्ययनों में पारंपरिक "सिपाही विद्रोह" की अवधारणा से हटकर इसे एक व्यापक जन–आंदोलन के रूप में समझने का प्रयास किया गया है।

हालाँकि 1857 के विद्रोह का मुख्य केंद्र उत्तर भारत के क्षेत्र रहे, परंतु इसका प्रभाव देश के अन्य हिस्सों में भी व्यापक रूप से देखा गया। वर्तमान झारखंड का छोटानागपुर क्षेत्र भी इस विद्रोह से अछूता नहीं रहा। यहाँ के स्थानीय नेताओं, जमींदारों, आदिवासी समुदायों और सैनिकों ने मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष किया।[1]

छोटानागपुर क्षेत्र में पाण्डे गणपत राय का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे इस क्षेत्र के प्रमुख नेताओं में से एक थे, जिन्होंने 1857 के विद्रोह में सक्रिय भूमिका निभाई। उनका नेतृत्व न केवल सैन्य दृष्टि से महत्वपूर्ण था, बल्कि उन्होंने स्थानीय जनता को संगठित कर विद्रोह को एक व्यापक जन–आंदोलन का रूप दिया।[2]

इस क्षेत्र में अंग्रेजों की नीतियों ने जनता में असंतोष पैदा कर दिया था। स्थायी बंदोबस्त, जमींदारी प्रथा, अत्यधिक कर वसूली और महाजनों का शोषण लोगों के लिए असहनीय हो गया था। 1857 से पहले भी इस क्षेत्र में कई विद्रोह हो चुके थे, जैसे संताल विद्रोह (1855–56), जिसने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध प्रतिरोध की भावना को मजबूत किया। इसी पृष्ठभूमि में 1857 का विद्रोह छोटानागपुर में तेजी से फैल गया। पाण्डे गणपत राय ने ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव के साथ मिलकर विद्रोह का नेतृत्व किया। उन्होंने सैनिकों और स्थानीय जनता को संगठित कर अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष किया।[3] उनका योगदान इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि उन्होंने विद्रोह को संगठित और प्रभावी बनाने का प्रयास किया। कुमार (2008) ने 1857 के विद्रोह के क्षेत्रीय आयामों पर बल दिया। उनके अध्ययन में यह निष्कर्ष निकला कि छोटानागपुर में विद्रोह की जड़ें पहले

* शोधार्थी (इतिहास विभाग), मगध विश्वविधालय, बोधगया

से मौजूद सामाजिक और आर्थिक असंतोष में निहित थीं। उन्होंने यह भी बताया कि इस क्षेत्र में विद्रोह का स्वरूप स्थानीय परिस्थितियों से प्रभावित था, जहाँ आदिवासी और किसान समुदायों ने सक्रिय भागीदारी की। आदिवासी समाज, जो अपनी पारंपरिक भूमि व्यवस्था पर निर्भर था, इन नीतियों के कारण अपनी जमीन और अधिकारों से वंचित हो गया।[4] शर्मा (2010) ने झारखंड के आदिवासी आंदोलनों का ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया कि 1857 का विद्रोह आदिवासी प्रतिरोध की एक महत्वपूर्ण कड़ी था। उनके अनुसार, अंग्रेजों की भूमि नीतियों और महाजनी शोषण ने आदिवासी समाज को विद्रोह के लिए प्रेरित किया।[5] यह अध्ययन इस बात पर जोर देता है कि 1857 को केवल सैनिक विद्रोह के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए।

1857 के विद्रोह पर अनेक इतिहासकारों ने विस्तृत अध्ययन किया है, परंतु क्षेत्रीय नेताओं, विशेषकर छोटानागपुर के संदर्भ में पाण्डे गणपत राय की भूमिका पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है। प्रारंभिक इतिहासकारों जैसे बिपन चंद्र और आर.सी. मजूमदार ने 1857 के विद्रोह को मुख्यतः राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखा है, जिसमें प्रमुख घटनाओं और बड़े केंद्रों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। सिंह (2012) ने पाण्डे गणपत राय के नेतृत्व का विश्लेषण किया और यह पाया कि वे एक कुशल संगठक और रणनीतिकार थे। उन्होंने स्थानीय स्तर पर विद्रोहियों को संगठित किया और गुरिल्ला युद्ध शैली का प्रभावी उपयोग किया। इस अध्ययन में यह भी उल्लेख किया गया है कि उनके नेतृत्व ने विद्रोह को व्यापक जन–समर्थन दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[6] आधुनिक इतिहासकारों जैसे रणजीत गुहा ने विद्रोह को "जन–आधारित आंदोलन" के रूप में व्याख्यायित किया है, जिसमें किसान और आदिवासी समुदायों की भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया है। इसी प्रकार एस.सी. रॉय के अध्ययन आदिवासी समाज की संरचना और उनके संघर्ष को समझने में सहायक हैं। फिर भी, पाण्डे गणपत राय जैसे क्षेत्रीय नेताओं पर केंद्रित शोध अपेक्षाकृत सीमित है। उपलब्ध साहित्य यह संकेत करता है कि उनके योगदान को समुचित महत्व नहीं मिला है। यह शोध–पत्र इसी कमी को पूरा करने का प्रयास करता है।

पाण्डे गणपत राय के नेतृत्व और योगदान का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसमें उनके ऐतिहासिक संदर्भ, विद्रोह में उनकी भूमिका, विद्रोह के स्वरूप, असफलता के कारण, परिणाम और ऐतिहासिक महत्व का विश्लेषण किया गया है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य– छोटानागपुर क्षेत्र ऐतिहासिक रूप से आदिवासी बहुल क्षेत्र रहा है, जहाँ मुंडा, उरांव, संताल और अन्य जनजातियाँ निवास करती थीं। इन समुदायों की अपनी पारंपरिक सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था थी, जो सामुदायिक भूमि स्वामित्व और प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित थी। अंग्रेजों के आगमन के बाद इस क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए। ईस्ट इंडिया कंपनी ने यहाँ अपनी प्रशासनिक पकड़ मजबूत की और स्थायी बंदोबस्त तथा जमींदारी व्यवस्था लागू की। इससे बाहरी जमींदारों और महाजनों का प्रवेश हुआ, जिन्होंने स्थानीय लोगों का शोषण शुरू किया।

इसके परिणामस्वरूप आदिवासी समाज अपनी भूमि से वंचित हो गया और उन्हें आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। करों की वृद्धि और जबरन वसूली ने स्थिति को और गंभीर बना दिया। वर्मा (2015) का अध्ययन 1857 के विद्रोह के सामाजिक प्रभावों पर केंद्रित है। उनके अनुसार, छोटानागपुर में इस विद्रोह ने राजनीतिक चेतना को बढ़ाया और लोगों में अंग्रेजी शासन के प्रति विरोध को मजबूत किया। उन्होंने यह भी बताया कि विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने अपने प्रशासनिक ढांचे को और सख्त कर दिया।[7]

इस प्रकार छोटानागपुर में अंग्रेजी शासन के प्रति असंतोष धीरे–धीरे बढ़ता गया, जिसने आगे चलकर 1857 के विद्रोह को समर्थन प्रदान किया।

छोटानागपुर में घटनाक्रम– 1857 का विद्रोह छोटानागपुर क्षेत्र में भी व्यापक रूप से फैल गया। रांची, हजारीबाग और पलामू जैसे क्षेत्रों में विद्रोह की घटनाएँ देखने को मिलीं। पाण्डे गणपत राय और ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव ने मिलकर इस विद्रोह का नेतृत्व किया। उन्होंने स्थानीय सैनिकों, जमींदारों और आदिवासी समुदायों को संगठित किया और अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष प्रारंभ किया। हजारीबाग में सैनिकों ने विद्रोह कर जेल तोड़ दी और कैदियों को मुक्त कर दिया। इसके बाद विद्रोहियों ने अंग्रेजी प्रशासन पर कई हमले किए। रांची और आसपास के क्षेत्रों में विद्रोहियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष किया और कुछ समय के लिए प्रशासन को चुनौती दी। हालांकि प्रारंभिक सफलता के बाद अंग्रेजों ने अपनी सैन्य शक्ति का उपयोग कर विद्रोह को दबा दिया।

विद्रोह का स्वरूप– छोटानागपुर में 1857 का विद्रोह बहुआयामी स्वरूप का था। यह केवल सैनिक विद्रोह नहीं था, बल्कि इसमें किसान, आदिवासी और स्थानीय जमींदार सभी शामिल थे। इस विद्रोह की एक प्रमुख विशेषता इसका जन–आधारित होना था। इसमें समाज के विभिन्न वर्गों ने मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष किया। गुरिल्ला युद्ध शैली का उपयोग भी इस विद्रोह की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। विद्रोहियों ने जंगलों और पहाड़ी क्षेत्रों का उपयोग कर अंग्रेजों पर अचानक हमले किए। इस प्रकार यह विद्रोह एक व्यापक जन–आंदोलन के रूप में उभरा। तिवारी (2023) ने पाण्डे गणपत राय के नेतृत्व और उनकी रणनीतियों का पुनर्मूल्यांकन किया। उन्होंने पाया कि गणपत राय ने स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप युद्ध रणनीतियाँ अपनाईं, जिनमें गुरिल्ला युद्ध प्रमुख था। यह अध्ययन उनके नेतृत्व की व्यावहारिकता और प्रभावशीलता को उजागर करता है।[8]

गुप्ता (2025) ने आधुनिक इतिहास लेखन में 1857 के विद्रोह के पुनर्पाठ पर ध्यान केंद्रित किया। उनके अनुसार, हाल के वर्षों में क्षेत्रीय इतिहास और उपेक्षित नायकों पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। पाण्डे गणपत राय जैसे नेताओं को अब स्वतंत्रता संग्राम के महत्वपूर्ण नायकों के रूप में पुनः स्थापित किया जा रहा है।[9]

पाण्डे गणपत राय की भूमिका– पाण्डे गणपत राय 1857 के विद्रोह में छोटानागपुर क्षेत्र के प्रमुख नेताओं में से एक थे। वे एक सक्षम और दूरदर्शी नेता थे, जिन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका योगदान मुख्यतः सैन्य संगठन, नेतृत्व और रणनीति के क्षेत्र में देखा जाता है। उन्होंने विद्रोह के दौरान सैनिकों और स्थानीय जनता को संगठित किया और उन्हें एकजुट कर अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रेरित किया।

पाण्डे गणपत राय ने ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव के साथ मिलकर विद्रोह का नेतृत्व किया। दोनों नेताओं के बीच अच्छा समन्वय था, जिसने विद्रोह को मजबूती प्रदान की। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में विद्रोहियों को संगठित किया और अंग्रेजों के खिलाफ योजनाबद्ध तरीके से संघर्ष किया। उन्होंने गुरिल्ला युद्ध रणनीति का उपयोग किया, जिससे विद्रोहियों को प्रारंभिक सफलता मिली। उन्होंने स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों का लाभ उठाया और जंगलों तथा पहाड़ियों में छिपकर अंग्रेजों पर हमला किया। पाण्डे गणपत राय का एक महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने आदिवासी समुदायों और किसानों को विद्रोह में शामिल किया। इससे विद्रोह को व्यापक जन–समर्थन मिला और यह केवल सैनिक विद्रोह न रहकर जन–आंदोलन बन गया। उन्होंने लोगों में स्वतंत्रता की भावना को जागृत किया और उन्हें अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रेरित किया। उनका नेतृत्व साहस, संगठन क्षमता और दूरदर्शिता का प्रतीक था। हालांकि अंततः अंग्रेजों ने इस विद्रोह को दबा दिया और पाण्डे गणपत राय को पकड़ लिया गया, परंतु उनका योगदान इतिहास में अमिट है। उन्होंने अपने बलिदान से यह सिद्ध किया कि स्वतंत्रता के लिए संघर्ष आवश्यक है। मिश्रा (2017) ने क्षेत्रीय नेताओं की भूमिका पर विशेष ध्यान दिया। उनके अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया कि पाण्डे गणपत राय और ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव जैसे नेताओं ने न केवल विद्रोह का नेतृत्व किया, बल्कि विभिन्न सामाजिक वर्गों को एकजुट करने में भी सफलता प्राप्त की। यह अध्ययन विद्रोह के सामूहिक स्वरूप को रेखांकित करता है।[10] कुमारी (2019) ने झारखंड के स्वतंत्रता आंदोलन में आदिवासी योगदान का विश्लेषण किया। उनके अनुसार, आदिवासी समाज ने विद्रोह को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, विशेष रूप से रसद, आश्रय और स्थानीय समर्थन प्रदान करने में। यह अध्ययन आदिवासी दृष्टिकोण को प्रमुखता देता है, जो पहले के इतिहास लेखन में अक्सर उपेक्षित रहा है।[11] अली (2021) ने 1857 के विद्रोह को एक व्यापक जन–आंदोलन के रूप में पुनः व्याख्यायित किया। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि यह विद्रोह विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कारणों का संयुक्त परिणाम था। उनके अध्ययन में छोटानागपुर क्षेत्र को एक महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जहाँ स्थानीय नेतृत्व ने विद्रोह को मजबूत किया।[12]

असफलता के कारण– विद्रोह की असफलता के मुख्य कारणों में संगठन की कमी, आधुनिक हथियारों का अभाव और विभिन्न क्षेत्रों के बीच समन्वय की कमी शामिल थे। अंग्रेजों की सैन्य शक्ति अधिक मजबूत थी और उनके पास बेहतर संसाधन थे। इसके अतिरिक्त, संचार व्यवस्था की कमी और कुछ क्षेत्रों में सीमित समर्थन के कारण विद्रोह कमजोर पड़ गया। 1857 के विद्रोह की व्याख्या में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। अब इसे केवल सैनिक विद्रोह के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यापक जन–आंदोलन के रूप में देखा जा रहा है। पाण्डे गणपत राय के संदर्भ में भी यह पाया गया कि वे केवल एक स्थानीय नेता नहीं थे, बल्कि एक प्रभावी

संगठक और रणनीतिकार थे, जिन्होंने छोटानागपुर क्षेत्र में विद्रोह को दिशा दी। हालांकि, अभी भी इस विषय पर और गहन शोध की आवश्यकता है, विशेष रूप से प्राथमिक स्रोतों और स्थानीय अभिलेखों के आधार पर।

परिणाम–

विद्रोह के दमन के बाद अंग्रेजों ने छोटानागपुर क्षेत्र में अपना नियंत्रण और मजबूत कर लिया। विद्रोह में शामिल नेताओं को कठोर दंड दिया गया, जिनमें पाण्डे गणपत राय भी शामिल थे। अंग्रेजों ने प्रशासनिक सुधारों के नाम पर अपनी नीतियों को और सख्त कर दिया और विद्रोह की संभावनाओं को समाप्त करने के लिए कड़े कदम उठाए। हालांकि विद्रोह असफल रहा, परंतु इसने अंग्रेजों को यह संदेश दिया कि भारतीय जनता उनके शासन से संतुष्ट नहीं है। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने अपनी नीतियों में कुछ बदलाव किए।

पाण्डे गणपत राय का योगदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने छोटानागपुर क्षेत्र में विद्रोह को संगठित किया और इसे एक जन–आंदोलन का रूप दिया। उनका नेतृत्व यह दर्शाता है कि स्वतंत्रता की भावना केवल बड़े शहरों तक सीमित नहीं थी, बल्कि दूरस्थ क्षेत्रों में भी मौजूद थी। उनका संघर्ष आगे चलकर अन्य आंदोलनों के लिए प्रेरणा बना और स्वतंत्रता की चेतना को मजबूत किया। इस प्रकार पाण्डे गणपत राय का योगदान भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

चर्चा– इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पाण्डे गणपत राय का योगदान केवल एक सैन्य नेता तक सीमित नहीं था, बल्कि वे एक प्रभावी जन–नेता भी थे। उन्होंने विद्रोह को संगठित करने, विभिन्न वर्गों को जोड़ने और रणनीतिक दृष्टि से इसे आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। छोटानागपुर में विद्रोह का स्वरूप स्थानीय परिस्थितियों से प्रभावित था, जहाँ आदिवासी समाज और ग्रामीण जनता ने सक्रिय भागीदारी की। यह विद्रोह इस बात का प्रमाण है कि स्वतंत्रता की चेतना समाज के हर वर्ग में व्याप्त थी। इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि क्षेत्रीय आंदोलनों का राष्ट्रीय आंदोलन से गहरा संबंध था। पाण्डे गणपत राय का नेतृत्व इस समन्वय का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। हालांकि विद्रोह असफल रहा, परंतु इसने भविष्य के आंदोलनों के लिए आधार तैयार किया और स्वतंत्रता की भावना को सुदृढ़ किया।

संदर्भ सूची–

1. बिपन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संग्राम, पेंगुइन बुक्स।
2. आर.सी. मजूमदार, सिपाही विद्रोह और 1857 का आंदोलन।
3. एस.सी. रॉय, मुंडा और उनका देश, भारत सरकार के अभिलेख, 1857 के विद्रोह संबंधी दस्तावेज।
4. कुमार, अजय (2008), 1857 का विद्रोह, क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य, नई दिल्ली, ओरिएंट पब्लिशिंग।
5. शर्मा, राकेश (2010), झारखंड के आदिवासी आंदोलन का इतिहास, पटना, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी।
6. सिंह, विनोद कुमार (2012), पाण्डे गणपत राय और 1857 का विद्रोह, रांची, झारखंड अध्ययन केंद्र।
7. वर्मा, संजीव (2015), 1857 के विद्रोह का सामाजिक प्रभाव, वाराणसी, ज्ञान प्रकाशन।
8. तिवारी, प्रदीप (2023), पाण्डे गणपत राय का नेतृत्व और रणनीति, पटना, अकादमिक पब्लिशर्स।
9. गुप्ता, राजीव (2025), 1857 का विद्रोह और आधुनिक इतिहास लेखन, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. मिश्रा, अरुण (2017), भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में क्षेत्रीय नेतृत्व, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन।
11. कुमारी, नीलम (2019), झारखंड में आदिवासी योगदान और स्वतंत्रता आंदोलन, रांची, जनजातीय शोध संस्थान।
12. अली, मोहम्मद (2021), 1857 का विद्रोहः एक पुर्नव्याख्या, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन।

थाट राग पद्धति का आधुनिक प्रासंगिकता : एक विहंगावलोकन

डॉ. कविता*

शोध सारांश-

थाट राग पद्धति भारतीय संगीत की एक महत्वपूर्ण संरचना है, जिसका प्रयोग रागों के वर्गीकरण और उनकी स्वर व्यवस्था को समझने के लिए किया जाता है। थाट शब्द का प्रयोग प्राचीन ग्रंथों में विभिन्न रूपों में हुआ है, जैसे मेल, संस्थान, संस्थिति, और ठाट। "मेल" संस्कृत का शब्द है, जो मिल और घञ् प्रत्ययों से बना है, और इसका अर्थ संगम, मिलन, या जोड़ है। संगीत की दृष्टि से मेल का तात्पर्य एक विशेष क्रम में रखे गए स्वरों से है, जिनसे राग उत्पन्न करने की क्षमता होती है। इस शोध का मुख्य उद्देश्य थाट पद्धति के आधुनिक रूप को स्पष्ट करना है, और यह दिखाना है कि किस प्रकार विभिन्न संगीतज्ञों और ग्रंथकारों ने इस पद्धति को विकसित किया है। सादिक अली खाँ, पं. भातखण्डे, नवाब अली खाँ, सुब्रहम दीक्षित, और फिरोज फ्रॅाम जैसे संगीतज्ञों ने थाट की अवधारणा को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया है। इन विद्वानों ने रागों के वर्गीकरण को समझने के लिए थाट पद्धति का उपयोग किया, जिससे भारतीय संगीत को व्यवस्थित और संरचित रूप से प्रस्तुत किया जा सका।

पं. भातखण्डे ने थाट पद्धति का विस्तार करते हुए रागों को दस प्रमुख थाटों में विभाजित किया, जो आज भी संगीत शिक्षा में प्रचलित हैं। इसके अतिरिक्त, विभिन्न विद्वानों ने थाट शब्द का प्रयोग अपनी-अपनी धारा में किया और इसे आधुनिक संगीत पद्धतियों के संदर्भ में प्रस्तुत किया। इस शोध से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि थाट पद्धति ने भारतीय संगीत को व्यवस्थित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके माध्यम से रागों की पहचान और समझ को सरल बनाया गया, और यह आज भी संगीतज्ञों के लिए एक महत्वपूर्ण और उपयोगी प्रणाली बनी हुई है।

मुख्य शब्द- थाट, ठाट, नवाब अली खाँ, फिरोज फ्रॅाम, पं. भातखण्डे

प्रस्तावना: थाट राग पद्धति भारतीय संगीत का एक महत्वपूर्ण तत्व है, जिसका उद्देश्य रागों के वर्गीकरण को व्यवस्थित और सुगम बनाना है। "थाट" शब्द का उपयोग प्राचीन ग्रंथों में विभिन्न रूपों में हुआ है, जैसे मेल, संस्थान, संस्थिति, और ठाट। संगीत में थाट को रागों के निर्माण में आवश्यक स्वर समूह के रूप में देखा जाता है, जो किसी विशेष राग की विशेषताओं को निर्धारित करता है। यह पद्धति विशेष रूप से तंत्रीवाद्य instruments में महत्वपूर्ण है, जहां स्वर व्यवस्था के आधार पर रागों का चयन और वर्गीकरण किया जाता है। आधुनिक समय में थाट पद्धति का विकास विभिन्न संगीतज्ञों, जैसे पं. भातखण्डे, सादिक अली खाँ, सुब्रहम दीक्षित और नवाब अली खाँ द्वारा किया गया है। इन विद्वानों ने थाट शब्द का प्रयोग रागों की संरचना और उनके वर्गीकरण के लिए किया है। इस शोध का उद्देश्य थाट पद्धति की ऐतिहासिक उत्पत्ति और उसकी आधुनिक स्थिति का अध्ययन करना है, ताकि इसकी संकल्पना को स्पष्ट किया जा सके और इसके विकास को समझा जा सके।

हिन्दी शब्दकोश में ठाट का अर्थ ढाँचा, रचना, बनावट, शैली, ढंग इत्यादि दिया गया है।[1]

मेल संस्कृत का शब्द है जो मिल और घञ् प्रत्ययों के मिलने से बना है। मिल घञ् मेल, जिसका अर्थ है मिलाप, संग अथवा जोड़। संगीत की दृष्टि से मेल शब्द का अर्थ इस प्रकार समझा जा सकता है कि क्रमपूर्वक स्वरों का यह समूह जिसमें राग उत्पन्न करने की शक्ति हो।[2]

सुन्दरियों युक्त (पर्दे) तंत्रीवाद्यों में थाट शब्द का प्रयोग रागों की स्वर व्यवस्था के आधार पर किया जाता है अतः तंत्रीयुक्त वाद्य में पर्दा को ऊपर अथवा नीचे करने से विभिन्न स्वर व्यवस्था प्राप्त होती है जिसके आधार पर हम विभिन्न राग बजा सकते है।

तंत्रीयुक्त वाद्यों के अन्तर्गत कलाकारों को थाट शब्द का प्रयोग बार-बार करना पडता था और तंत्रीयुक्त वाद्यों पर रागों की स्वर व्यवस्था के आधार पर ही थाटों के नाम प्रचलित हुए। परन्तु गायकों को वादकों के अनुसार स्वर व्यवस्था नहीं करनी पड़ती थी।

थाट एक आधुनिक शब्द माना गया है परन्तु थाट शब्द के कुछ अवशेष मध्यकाल में दृष्टव्य होने लगे थे जिसके उपरान्त तंत्रवादकों ने थाट शब्द का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। इसके अतिरिक्त गायक भी थाट शब्द का प्रयोग करने लगे और थाट या ठाट एक ही शब्द के दो रूप है।

* अतिथि व्याख्याता– सितार, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)
ईमेल– kavitamusicdu@gmail.com

इसके अतिरिक्त वर्गीकरण से तात्पर्य है समान गुणों के आधार पर बॉटना। अतः समान गुणों के आधार पर उन्हें एक वर्ग में रख देते है। इसी प्रकार राग के स्वरों के आधार पर उनके समान गुणों को मध्य नजर रखते हुए उन्हें एक वर्ग में रख देते है। इसी तरह समय के साथ-साथ राग वर्गीकरण की संज्ञाएँ बदलती रही एवं इनके नामों एवं संख्या में भिन्नता पाई जाती है।

दक्षिणी संगीत पद्धति में गणित के आधार पर 72 मेलों का निर्माण हुआ परन्तु उत्तर भारतीय संगीत में यह संख्या अधिक से अधिक 32 बन सकी एवं इन 32 मेलों का निर्माण 12 स्वरों के आधार पर हुआ।

आधुनिक ग्रन्थकारों का थाट के संदर्भ में विचार- मुहम्मद रजा ने नगमाते आसफी ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में बिलावल को शुद्ध सप्तक माना गया है। इस ग्रंथ में 19 स्वर कहे गए है। मुहम्मर रजा जी ने थाट पद्धति के आधार पर रागों का वर्गीकरण किया है।

सादिक अली खाँ द्वारा रचित ग्रन्थ सरमायइशरत है। इस ग्रन्थ को उर्दू भाषा में प्रकाशित किया गया है। इस ग्रंथ में दस थाटों के अन्तर्गत उत्तर भारतीय रागों का वर्गीकरण प्राप्त होता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि पंडित भातखण्डे जी की थाट पद्धति इस ग्रन्थ से अपनायी गयी है। इस ग्रन्थ में बारह मकामात का वर्णन भी प्रास होता है। सादिक अली खाँ जी के मतानुसार ईरानी मकामात भारतीय रागों के आधार पर बनाये गए है।

संगीत सम्प्रदाय प्रदर्शिनी ग्रन्थ की रचना सुब्रहम दीक्षित ने की। यह तेलगु भाषा में रचित ग्रन्थ है। इन्होंने अपने ग्रन्थ में 72 थाट पद्धति को अपनाया है।

भरत कल्पलता ग्रंथ के रचनाकार के विषय में सही जानकारी प्राप्त नहीं होती। इस ग्रन्थ में 72 प्रकार के मेलकर्ता 36 प्रकार के राग एवं विभिन्न उपकरणों की व्याख्या प्राप्त होती है।

पंडित भारतखण्डे जी द्वारा रचित ग्रंथ श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् माना गया है। पंडित भातखण्डे जी ने अपने ग्रन्थ में थाट की परिभाषा पूर्ववर्ती ग्रंथकारों के समान मानी है जो इस प्रकार है:-

मेल स्वर समूह स्याद्रागव्यजन्शक्तिमान्।
श्लिष्टोच्चारण मेवात्र समूह परिकीर्तितः।[3]

अर्थात् मेल उस स्वर क्रमपूर्वक स्वर समूह को कहते है जो राग निर्माण में समर्थ हो उसे मेल कहते है।

पंडित भातखण्डे जी ने थाट पद्धति का निर्माण दक्षिणी मेल पद्धति के आधार पर किया है। पंडित जी ने व्यंकटमखी के 72 मेलों का अनुसरण करते हुए उनके 72 मेलों में से मुख्य दस मेलों का निर्माण किया

जो वर्तमान समय में थाट पद्धति के नाम से सम्बोधित हुआ। पंडित जी ने थाट पद्धति के आधार पर उत्तर भारतीय रागों का वर्गीकरण किया है।

पंडित भातखण्डे जी ने दस थाटों के नाम इस प्रकार बताए हैं-

यमन विलावल और खमाजी भैरव पूरवि मारवा काफी।
आसा भैरयि तोड़ी बखाने दशमित ठाट चतुर गुनि माने।।[4]

अर्थात् पंडित जी ने बिलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी तोडी माने है। कुछ विद्वानों का मानना है कि इनकी संख्या दस से कम करने पर कठिनाईयों उत्पन्न हो सकती है।

इन दस थाटों में जन्य प्रचलित रागों को पाँच वर्गों में विभाजित किया गया है[5]:-

- उस वर्ग वाला ठाट जिनमें केवल शुद्ध स्वर लगते है जैसे- बिलावल ।
- जिसमें केवल एक विकृत और बाकी शुद्ध स्वर लगते है जैसे खमाज, कल्याण।
- जिनमें दो विकृत व अन्य शुद्ध स्वर लगते है जैसे काफी, भैरव, मारवा।
- तीन विकृत व अन्य शुद्ध स्वर जैसे- पूर्वी, आसावरी।
- चार विकृत व अन्य शुद्ध स्वर लगते है जैसे तोड़ी. भैरवी।

इस प्रकार पंडित भातखण्डे जी ने थाट पद्धति के आधार पर रागों का वर्गीकरण किया परन्तु कुछ राग ऐसे है जो किसी भी थाट के अन्तर्गत नहीं रखे जा सकते और जिससे यह समस्या सामने आयी उन्हें किस थाट के अन्तर्गत रखे। इन समस्याओं को मध्यनजर रखते हुए एक नयी पद्धति ने जन्म लिया जिसे रागांग पद्धति के नाम से जाना गया।

नवाब अली खाँ द्वारा रचित ग्रंथ मारिफुनगमात माना गया है। इन्होंने भी रागों का वर्गीकरण थाट राग वर्गीकरण पद्धति के आधार पर किया है। यह ग्रंथ क्रियात्मक संगीत पर आधारित है।

पंडित फिरोज फ्रॅाम जी प्राचीन कालीन मूच्छर्ना पद्धति को स्वीकार करते है क्योंकि पंडित जी का मानना है कि जो वर्तमान समय में थाट पद्धति प्रचार में है वह प्राचीन मूर्च्छना की ही देन है। पंडित जी ने प्राचीन कालीन 11 मूर्छनाओं के आधार पर वर्तमान कालीन थाट राग पद्धति का निर्माण किया एवं 170 रागों का वर्गीकरण इन्होंने मूर्छना पद्धति एवं जनक-जन्य थाटों के आधार पर किया है। उपरोक्त कथन से प्रतीत होता है कि वर्तमान कालीन विद्वानों ने थाट राग पद्धति को अपनाया एवं इस पद्धति के आधार पर रागों का वर्गीकरण किया। परन्तु इस पद्धति में कुछ कमी प्रतीत हुई और एक नयी पद्धति सामने उभरकर आयी जिसे रागांग पद्धति के नाम से सम्बोधित किया गया। परन्तु फिर भी यह पद्धति थाट पद्धति के वर्चस्व को कम नहीं कर पायी। थाट पद्धति आरम्भिक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई और वर्तमान समय में थाट पद्धति का बोलबाला रहा।

निष्कर्ष: थाट राग पद्धति का इतिहास और विकास भारतीय संगीत के संगठित रूप से अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान करता है। प्रारंभ में तंत्रीवाद्य संगीत में थाट शब्द का प्रयोग हुआ, जो बाद में गायकों तक भी पहुंचा। पं. भातखण्डे जी ने थाट पद्धति को और अधिक सुव्यवस्थित किया और रागों के वर्गीकरण को 10 प्रमुख थाटों में बांटा, जिसे वर्तमान में मुख्य रूप से स्वीकार किया जाता है। हालांकि, इस पद्धति में कुछ समस्याएं भी उत्पन्न हुईं, जैसे कुछ रागों का किसी विशेष थाट के अंतर्गत वर्गीकरण न हो पाना। इसके बावजूद, थाट पद्धति ने संगीतज्ञों को रागों के वर्गीकरण और अध्ययन के लिए एक प्रभावी आधार प्रदान किया। इस पद्धति के माध्यम से रागों को समझना और प्रस्तुत करना अधिक सरल हुआ, और यह आज भी भारतीय संगीत शिक्षा में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि थाट पद्धति ने भारतीय संगीत की संरचना को अधिक स्पष्ट और व्यवस्थित किया है, और भविष्य में भी इसका महत्व बना रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. माथुर, डॉ., शोभा, भारतीय संगीत में मेल अथवा ठाट का ऐतिहासिक अध्ययन, विश्व प्रकाशन. पृ.2
2. निगम, डॉ. सरिता, हिन्दुस्तानी संगीत में राग वर्गीकरण, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली-110002, 2012, पृ. 107
3. व्यास, गुणवन्त माधवलाल, श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् पं. भातखण्डे, श्लोक -53, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्य अकादमी, भोपाल
4. माथुर, डॉ., शोभा, भारतीय संगीत में मेल अथवा ठाट का ऐतिहासिक अध्ययन, विश्व प्रकाशन, पृ. 67.
5. Rao, B. Subba, Raga Nidhi, 1956, p. 15.

ଔଓ

सुशीला टाक भौरे की कहानियों में स्त्री चेतना और संघर्ष

डॉ. जगत सिंह कठायत*

डॉ. सुशीला टाक भौरे के जीवन के विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि वे एक दलित परिवार से हैं इसीलिए दलितों की समस्याओं से वे स्वयं जूझ चुकी हैं जिसकी वजह से उनके लेखन में स्वभावतः कल्पना नहीं किन्तु यथार्थता निचुड़कर आई है । दलित जाति से होने के कारण उन्हें भी जन्म से उन सभी समस्याओं का सामना करना पड़ा । जो सामान्य रूप से एक दलित को सहन करना पड़ता है । उनका जन्म 04/03/1954 को हुआ था । " उनकी माताजी के अनुसार सुशीला जी की सही जन्म तिथि 1954 ई.के आषाढ़ माह की शुक्ल पक्ष की नवमी है ।"[1] उनका जन्म स्थान मध्यप्रदेश के होशंगाबाद के तहसील सिवनी मालवा का एक छोटा - सा गाँव ' बानापुरा ' है । उनकी माता का नाम पन्ना घांवरी था ,वह अशिक्षित थी फिर भी शिक्षा का महत्व अच्छी तरह से जानती थी ,इसलिए उन्होंने सभी बच्चों को पढ़ने का सुअवसर दिया । साथ ही साथ प्रेरणा देकर उनका हौंसला बढ़ाया । उनके पिताजी श्री रामप्रसाद घांवरी तीसरी कक्षा पास थे । सुशीला जी समेत परिवार में कुल मिलाकर सात भाई - बहन हैं । सुशीला जी के पालन - पोषण में उनकी नानी का महत्वपूर्ण योगदान है । उनके साथ रहने का लाभ सुशीला जी को यह हुआ कि उन्हें हर रोज नई - नई कहानियां सुनने को मिलती ,जिनसे उनमें कहानी लेखन के प्रति रुचि बढ़ने लगी । सुशीला जी दलितों में भी दलित मानी जानेवाली वाल्मीकि जाति है से है । इसलिए उन्हें सवर्ण जाति से बाहर रहना पड़ता था । इस जाति में लड़कियों की पढ़ाई पर ज्यादा ध्यान न देकर उनकी शादी करवाई जाती थी । मैट्रिक के बाद उनकी पढ़ाई रोक देने का निर्णय किया गया तब उन्होंने कारण बताया कि समाज के लोग एवं जमाने की गलतियाँ इसका कारण हैं । सुशीला जी दृढ़ संकल्प करते हुए कहती हैं कि - "मेरे साथ ऐसा कुछ नहीं होगा । मैं कॉलेज जाऊंगी । कॉलेज नहीं भेजोगे तो मर जाऊंगी ,खाना नहीं खाऊंगी,पानी नहीं पियूंगी ,घर का सब सामान तोड़ - फोड़ डालूंगी ।"[2] वह विद्रोही स्वभाव की थी ,दलित समाज में लड़कियों के प्रति कैसा व्यवहार और भेदभाव था उसका उन्होंने परिवार का आधार पाकर साहसिकता से सामना किया । डॉ.सुशीला टाक भौरे ने जिन कृतियों की रचना की हैं वे भूतकाल के समय को अपने में समेटकर ,वर्तमान के समक्ष प्रस्तुत हुई हैं । उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, आत्मकथा, लेखन, विवरण जैसी कई विधाओं में लेखन करके उन्होंने हिंदी साहित्य के क्षेत्र में अनुपम उपलब्धि प्राप्त की है ।

चेतना :-

'चेतना' शब्द का संबंध मनोविज्ञान से है ,लेकिन सामान्य जीवन में मानव 'चेतना' को अनुभूति संवेदन, चित, आत्मा, मन, भावना, विचार, बुद्धि, अहम आदि विभिन्न मानस गत व्यापारों का मूल रूप समझता है ।

विभिन्न मानसगत व्यापारों का मूल रूप समझता है। 'चेतना' शब्द बड़ा ही व्यापक और अर्थबोध प्रदान करने वाला है। 'चेतना' शब्द 'चेतन' से या सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो 'चेत' से बना है। 'चेत' शब्द 'चेतस्' का पर्याय है, जो संस्कृत से ग्रहण किया गया है। 'चेतना' शब्द का प्रयोग ज्ञान, होश, बुद्धि, चेत और जीवन के अर्थ में किया जाता है। संस्कृत में इसका अर्थ आत्मा, जीव, परमात्मा, मनुष्य, प्राणी, मन आदि होता है। 'चेतना' शब्द अकर्मक एवं सकर्मक दोनों क्रियाओं में भिन्न अर्थ प्रदान करता है। साहित्यकोश के अनुसार "चेतन मानव की प्रमुख विशेषता चेतना है, अर्थात् वस्तुओं, विषयों, व्यवहारों का ज्ञान। 'चेतना' की परिभाषा कठिन है पर इसका वर्णन हो सकता है। चेतना की प्रमुख विशेषताएँ हैं- निरन्तर परिवर्तनशीलता अथवा प्रवाह । इस प्रवाह के साथ-साथ विभिन्न अवस्थाओं में एक अविच्छिन्न एकता और साहचर्य। चेतना का प्रभाव हमारे अनुभव वैचित्र्य से प्रमाणित होता है और चेतना की अविच्छिन्न एकता हमारे व्यक्तिगत तादात्म्य के अनुभव से।"[3] इस प्रकार चेतना मानसिक प्रक्रिया की एक जागृत

* विभागाध्यक्ष–हिंदी, लक्ष्मण सिंह महर परिसर पिथौरागढ़, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा, उत्तराखंड

अवस्था है। हमारे मानव मन की कल्पना, इच्छा-अपेक्षा, विचार भावना आदि की सक्रिय अवस्था की अनुभूति चेतना है।

नि : संदेह मानव चेतना सामाजिक वातावरण के संपर्क में बौद्धिकता के आधार पर गतिमान रहेगी। इस प्रकार विश्व के संपूर्ण संचालन का भार चेतना पर ही है। अपने व्यापक अर्थ में 'चेतना' को 'बोध' या 'चैत्य' के समानार्थक माना जा सकता है। 'चेतना' निर्जीव या जड़ पदार्थों में नहीं होती इसीलिए चेतना संपन्न जीवधारी निर्जीवों से अधिक कुशल होता है। चेतना के अंतर्गत परिवर्तनशीलता विद्यमान होती है। इस परिवर्तनशीलता में भी अविच्छिन्न एकता और साहचर्य का रूप दृष्टिगत होता है।

चेतना : शब्द की परिभाषा -

चेतना की परिभाषा भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अलग-अलग दी है। कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

मिल्टन के मतानुसार-"चेतना को चिन्तनशील प्राणी द्वारा अपने कार्यों अथवा प्रवृत्तियों की स्वीकृति माना है।"[4]

लोके के मतानुसार-"मनुष्य के मन में जो कुछ घटित होता है, उसका प्रत्यक्ष ज्ञान चेतना है।"[5]

डॉ. रत्नाकार पाण्डेय के मतानुसार- "चेतना वह तत्व है, जिसमें ज्ञान की, भाव की और व्यक्ति अर्थात् क्रियाशीलता की अनुभूति होती है।"[6]

इस प्रकार 'चेतना' शब्द आत्मा और बुद्धि दोनों से संबंधित है। 'चेतना' जीवधारियों में रहने वाला वह तत्व है जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है। दूसरे शब्दों में हम उसे मनुष्यों की जीवन-क्रियाओं को चलाने वाला तत्व कह सकते हैं।

उनके कहानी संग्रह की कहानियों में निम्न प्रकार से चेतना और संघर्ष देखा गया हैं -

कहानी संग्रह -

संघर्ष सन् 2006 में प्रकाशित सुशीला टाकभौरे का कहानी संग्रह ' संघर्ष ' बहुचर्चित है, क्योंकि इसमें दलित वर्ग से जुड़ी हुई कहानियाँ संग्रहित हैं। सभी कहानियां दलित वर्ग के लिए प्रेरणा बनती हैं कि वे मनुवादी विचारों से मुक्त होकर आम्बेडकरवादी विचारों को अपनाएँ।

'संघर्ष' कहानी इस संग्रह की प्रमुख कहानी है, क्योंकि उसी के नाम पर इस संग्रह का शीर्षक लेखिका ने दिया है। शंकर नामक दलित लड़का बचपन से ही शरारती होने के कारण सवर्ण लोग उसके माँ-बाप से हमेशा शिकायत करते हैं। उसकी नानी गाँव में साफ सफाई करती है, जिससे शंकर का मजाक उसके स्कूल के सहपाठियों द्वारा उड़ाया जाता है। शंकर अपनी नानी को यह काम छोड़ देने के लिए समझाता है लेकिन नानी अपनी मजबूरियाँ उसे समझाती है। वह कहती है- "बेटा, मैने शुरू से यही काम किया है। सभी जाने हैं में कौन हूँ। अब मैं यह काम छोड़ भी देऊँ तो क्या मेरी जाति बदल जायेगी? जो जाति है वह तो वही रहेगी। काम करो चाहे न करो.......कहलायेंगे हम भंगी ही.....।"[7]

उपर्युक्त संदर्भ से लेखिका ने स्पष्ट किया है कि निम्नवर्ग अपना परम्परागत कार्य नहीं करेगा तो भी जन्म से उसे जिस वर्ग के तहत माना जाता है उसमें कोई बदलाव नहीं आएगा।

शंकर पढ़ाई के महत्व को समझकर उच्च ज्ञान प्राप्त करके अच्छी नौकरी पाना चाहता है, लेकिन सवर्ण दबंगों के व्यवहार से वह बाधा का अनुभव करता है। सवर्ण लड़कों के बार-बार चिढ़ाए जाने पर वह एक बार कुश्ती लड़ने के बहाने उनको मार-मारकर अपमान का बदला लेता है। उसे मास्टरजी स्कूल से निकलवाना चाहते हैं तो वह बड़ी सी लाठी लेकर मरने-मारने की चाह रखकर स्कूल के सामने खड़ा हो जाता है। अनहोनी की आंशका से उसे वापिस स्कूल में पढ़ने दिया जाता है। शंकर अपनी मेहनत से दसवीं परीक्षा को प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करके अपनी जाति का प्रथम मैट्रिक उत्तीर्ण लड़का बन जाता है।

'जन्मदिन' कहानी में दो दलित परिवारों द्वारा भंगी के रूप में जो साफ-सफाई का घिनौना कार्य करवाया जाता है उसका वर्णन है। दलित भंगी जाति के मनुष्य जैसे सवर्णों के घर का मैला ढोने के लिए ही जन्में हों-इस प्रकार का कार्य उन्हें करना पड़ता है। इस विषय में लेखिका लिखती हैं- "जब देश स्वतंत्र नहीं था तब भी और देश

परतंत्र होने के पहले भी इनकी गिनती मनुष्यों में नहीं थी। उस समय देश में जिन लोगों की हुकूमत चलती थी, वे इन्हें कुत्ते-बिल्लियों से भी निष्कृष्ट, निम्न, अपावन, अशुभ या बुरा मानते थे। तब इनकी गिनती भला मनुष्यों में कैसे होती?"[8]

ऐसा ही काम करने वाले प्रेम राठौर के घर जब सुशिक्षित मुन्ना नामक लड़का आता है और उनकी हालत देखता है तो उन लोगों को यह पुश्तैनी कार्य छोड़कर हड़ताल करने की सलाह देता है। ऐसा करने से सवर्णों को अपने घर में पक्की लैट्रिन बनाने के लिए मजबूर होना पड़ेगा और निम्न वर्ग को मैला ढोने से मुक्ति मिल जाएगी ऐसा मुन्ना समझाता है। बड़े-बुजुर्ग विचार-विमर्श करके दूसरे दिन हड़ताल कर देते हैं और नारकीय कार्य से मुक्ति पाते हैं।

'सिलिया' कहानी में एक दलित लड़की सिलिया के साथ स्कूल में, गाँव में जो भेदभाव भरा व्यवहार सवर्णों द्वारा किया जाता है उसका वर्णन है। सिलिया संघर्ष करते हुए दृढ़संकल्प करती है कि- "मैं बहुत आगे तक पढ़ूगी, पढ़ती रहूंगी। उन सभी परम्पराओं के मूल कारणों का पता लगाऊंगी, जिन्होंने हमें समाज में अछूत बना दिया है। मैं विद्या, बुद्धि और विवेक से अपने आपको ऊँचा साबित करके रहूँगी। किसी के सामने झुकूंगी नहीं। न ही कभी अपना अपमान सहन करूँगी।"[9]

सीलिया की मां और नानी भी उसे आगे पढ़ने में सहयोग देती हैं । वह उच्च शिक्षा हासिल करके अपनी बिरादरी के लिए सामाजिक जागृति के कार्य करने लगी थी। बीस वर्षों बाद वह दलित मुक्ति आंदोलन की सक्रिय कार्यकर्ता, समाजसेविका, लेखिका बनकर मंत्री महोदय द्वारा सम्मानित की जा रही थी। इस तरह उनकी चेतना जागृत होती जा रही थी ।

'बदला' कहानी में निम्नवर्गीय लड़के कल्लू को परिवारवालों द्वारा बार-बार समझाया जाता है कि सवर्णो से वह किनारा करके चले। बार-बार सवर्ण लड़के जब उसे अपमानित करते हैं तब वह अपनी सहनशक्ति खोकर उन लड़कों को मारता-पीटता है। एक दिल कल्लू को अकेला पाकर कुछ दबंग सवर्ण लट्ठधारी उस पर हमला कर देते हैं। उसी समय वहाँ मौजूद अछूत लोग एक दल बनाकर लठैतों पर हमला करके वहाँ से उनको भगाते हैं और कल्लू की जान बचाते हैं। निम्न वर्ग में जो बदला लेने की भावना जगी उसके पीछे कानूनी रखवालों की जो नजरअंदाजी है उसको स्पष्ट करते हुए लेखिका ने लिखा है- "कैसी-कैसी घटनाएँ होती हैं गाँव में। न पुलिस-न कानून, बस अंध कानून। जित्तकी लाठी उसकी भैंस । पुलिस को बुलाना भी झंझट है। सबसे पहले तो वे बुलाने वालों को ही तंग कर डालते हैं क्योंकि जिनके विरुद्ध उनको बुलाया गया है, उन्हें वे भी जानते हैं तब बात आगे बढ़ने के बदले वहीं दब जाती है। शोषित, पीड़ित व्यक्ति ही अत्याचारियों से हाथ जोड़कर माफी मांगते रहते हैं।"[10]

'छौआ माँ' कहानी में साठ साल की दलित नारी छौआ माँ के दर्दनाक जीवन का वर्णन है। वे सवर्णों के घर जचकी का काम करती है। एक बार उनकी गैर मौजूदगी में उनकी बेटी जो जचकी के कार्य को नहीं जानती थी, उसे जबरदस्ती उस काम के लिए गाँव वाले ले जाते हैं। छौआ माँ जब गाँव वालों पर गुस्सा करके कठोर शब्दों का इस्तेमाल करती है तब सवर्ण गाँव वाले छौआ माँ को उनकी हैसियत बताते हुए कहते हैं-"तो का हो गओ?..... जचकी का काम बेटी से करा ही लियो तो का हो गओ?.... वा क्यों नहीं करेगी तेरो काम ? जो तू करती आई है, वही तेरी मोड़ी करेगी? जो तुमोर कर्म है वही तुमोर धरम है।.... गन्दगी उठाने का काम तुमरी जात के लोग ही करे हैं।"[11]

गाँववालों द्वारा जातिगत अपमान होते देख वे जचकी का काम हमेशा के लिए छोड़ देती है, साथ ही ऊँची जाति के परिवारों के गुप्त कार्यों एवं संबंधों के बारे में चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगती है। कई महीनों बाद रात में गाँव के कई लोग मशाल लेकर उन्हें बुलाने आते हैं, वे जाने से मना करती है तब उन्हें जिन्दा जला दिया जाता है।

'नयी राह की खोज' कहानी में निम्नवर्गीय लोग अपना जीवन सुधारने हेतु एक सामाजिक संस्था 'जागरुक' नाम से बनाकर नई राह खोज निकालते हैं। जिससे आने वाली पीढ़ी गुलामी न सहकर अपना विकास कर सके। उस संस्था का मुखिया रामचंद्र सबको समझाता है कि-"यह भी कोई जिन्दगी है? हाथ, बाँधे, सिर झुकाये सबको हांजी करते रहो...। वहीं जानवरों जैसा जीवन, गंदगी को साफ करते रहो और गंदगी में पड़े रहो। यह कब तक चलेगा? कहीं न कहीं तो इसकी रोक होनी चाहिए।"[12]

उस संस्था के सभी सदस्य तन-मन-धन से योगदान देकर 'अखिल भारतीय जागरुक सफाई कामगार समाज संस्था' यह नाम अपनी संस्था को देकर अपने दलित वर्ग के उच्च शिक्षित बेरोजगार लड़के-लड़कियों को उद्योग-धंधे पर लगा रहे हैं ताकि उन्हें मात व्यवसाय न करना पड़े।

'मुझे जवाब देना है' कहानी में उच्च शिक्षित निम्न वर्गीय प्राध्यापिका के मनोगत संवादों का वर्णन है। उसका उद्देश्य तो यह है कि वह अपने समाज के लिए कुछ अच्छा करे, लेकिन वह असमंजसभरी स्थिति में है। उसके भाई साहब की प्रेरणा से वह व्यर्थ इकट्ठे हुए धन में से अपने समाज का विकास करने की सीख पाती है।'धूप से भी बड़ा' कहानी में क्रिश्चियन बंटी एवं दलित सुनील तथा ब्राह्मण रोमा के प्रेम की कथा है। सुनील रोमा से निःस्वार्थ प्रेम करता है लेकिन रोमा जातिवादी अहं के कारण क्रिश्चियन बंटी से विवाह कर लेती है, लेकिन बंटी की बुरी आदतों से परेशान होकर उसे तलाक लेना पड़ता है। उसके बाद भी सुनील रोमा के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखता है, तब रोमा को सुनील के प्रति किये गये उपेक्षा भाव को याद करके पश्चाताप होत है। वह सोचती है- "केवल सुनील ही नहीं उसके पूरे परिवार ने उसे सम्मान के साथ स्वीकार किया, उसे इतना प्यार दिया-तब बड़ा कौन है? जो अमिट प्रेम का मूल्य जानते हैं, जो शरीर से अधिक व्यक्ति की भावना को महत्व देते हैं, जो अपने कर्तव्यों को भली-भाँति जानते हैं, जो गलतियों को नहीं अच्छाइयों को देखते हैं, जो दुःख-सुख में सच्चा साथ निभाते हैं-वे ही बड़े हैं।"[13] 'दमदार' कहानी कजरनी जाति की एक साहसिक नारी सुमन के विद्रोह की कहानी है ।

सुशीला टाकभौरे के 'टूटता वहम' कहानी संग्रह में दलित-वर्ग से जुड़ी कहानियाँ हैं। सवर्ण एवं दलित दोनों वर्ग शिक्षा-क्षेत्र में समानान्तर रूप से आगे बढ़ रहा है लेकिन रुढ़िवादी मानसिकता रखने वाले गिने-चुने सवर्ण परिवार आज भी दलितों को अपना दास मानते हैं। लेखिका ने इस स्थिति को समाज से दूर करने के लिए लेखन का सहारा लेकर अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा है-"जो दर्द अपने शरीर का होता है, वह अपना होता है। उसके लिए केवल दया, सहानुभूति नहीं बल्कि तुरन्त और उसका इलाज कैसे किया जाए? इस क्षेत्र में मैंने लेखन के माध्यम से प्रयत्न किया उपचार किया जाता है। उपचार के पहले यह जानना जरूरी है कि आखिर मर्ज क्या है है। जिनके लिए लिखा गया है, उन तक यह पहुंचे यही प्रयत्न है।"[14]

इस कहानी संग्रह की 'सिलिया', 'मुझे जवाब देना है', 'नयी राह की खोज' एवं 'धूप से भी बड़ा' कहानियाँ उनके 'संघर्ष' कहानी संग्रह में समाहित है। अन्य कहानियों का कथ्य पक्ष यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम कहानी 'मेरा बचपन' लेखिका के बचपन की दुःखदायक जिन्दगी को में भी भाई-बहनों की पढ़ाई, स्कूल में सवर्ण मास्टरों द्वारा भेदभाव, माँ की प्रेरणा से केवल प्रस्तुत करती है। दलित होने के कारण अभावों एवं छुआछूत से घिरा जीवन, ऐसी स्थिति उनकी ही पढ़ाई, आगे आना आदि मार्मिक प्रसंगों का चित्रण इस कहानी में किया गया है। लेखिका के उस समय के समाज में बच्चों को पढ़ाना बच्चों को परेशान करना माना जाता था। इसके पीछे का कारण यह था कि "उन दिनों हमारे जाति समुदाय में बच्चों की शिक्षा के प्रति माता-पिता जागृत नहीं थे, न लड़कों के प्रति, न लड़कियों के प्रति। बच्चों को पढ़ाकर का होयगो? अपनी जाति तो वही रहेगी। काम, रोजगार तो अपनी जाति के ही करनो पड़ेगो, फिर क्यों बच्चों को परेशान करें?"[15]

उनकी जाति की ऐसी भावना एवं उनके द्वारा बनाये गए ऐसे वातावरण के बीच भी उनकी माँ ने उन्हें ज्यादा पढ़ाने का दृढ़ निश्चय करके उन्हें उच्च शिक्षा दिलवाई। आज लेखिका की जो पहचान है वह उनकी माँ के संघर्ष एवं प्रेरणा का फल है-ऐसा लेखिका का मानना है।

'झरोखे' कहानी में लेखिका ने अपने साथ घटी उस घटना का वर्णन किया है जब वह एक सवर्ण गुरुजी द्वारा उनके घर पे उन्हें प्रेम से, मान-सम्मानपूर्वक खाना खिलाया जाता है। लेखिका को उनकी निम्न जाति के विषय में बचपन में ही उनके माता-पिता द्वारा सिखाया गया था-"हम निम्न जाति के हैं, ऊँची जाति के लोग अपने से भेदभाव मानते हैं। इसलिए कभी किसी सहेली के घर के भीतर नहीं जाना, न ही उनके घर के बर्तन में कुछ खाना-पीना। वे लोग अपने से एतराज करते हैं। इसलिए अपन ने भी कुछ कहने-सुनने का मौका नहीं देना चाहिए।"[16]

प्राध्यापिका बनने के बाद अब लेखिका को एहसास हुआ था कि उनकी माँ ने उन्हें यह सीख इसलिए दी थी कि ऐसा करने से सवर्णों की दया और सहानुभूति प्राप्त होगी, जिससे दलित-वर्ग शांति से जीवन-यापन तो कर सकेगा, लेकिन उसे उसके सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं होगे नहीं।

'मेरा समाज' कहानी लेखिका ने अपने समाज की बुराइयों को दिखाने के लिए लिखी है। पारम्परिक व्यवसाय को जारी रखने के लिए उनका समाज बच्चों की पढ़ाई के प्रति गंभीर नहीं था, तथा स्कूल जाने से पहले माता-पिता सफाई के कार्यों में बच्चों का सहयोग लेते थे। उन बच्चों को साफ-सफाई करते देख गाँव के सवर्ण बच्चे स्कूल में उन्हें चिढ़ाते थे। उनके समाज में पुरुष नौकरी करके घर चलाये, न चलाये, स्त्री को जिम्मेदारी उठानी पड़ती। उनके समाज में नारी पर पुरुषों के द्वारा जो अत्याचार किया कोई न कोई कार्य से जरूर बाँध दिया जाता, जिससे उसे घर और बाहर दोनों कार्य की जाता है उसे लेखिका ने इन शब्दों में वर्णित किया है- "यह एक परम्परा थी अपनी जवानी से बढ़ापे तक सास से पिटती रही, यही बात आने वाली बहू के साथ होती। पति दुश्मन जैसा भारता, पत्नी रोती रहती. फिर भी घर का पूरा काम करती, खाना बनाकर सबको खिलाती, कभी थोडा स्वयं खा लेती, नहीं तो भूखी ही रह जाती। वह अपने अच्छे दिनों की प्रतीक्षा इस तरह करती थी-एक दो साल में शायद उसकी स्थिति बदले, या एक दो बच्चे हो जाने पर उसे न्याय मिलेगा या बच्चे बड़े होने पर उसके दिन फिरेंगे, या फिर बहएँ आने के बाद स्थिति बदल जायेगी इसी प्रतीक्षा में पूरा जीवन निकल जाता था।"[17] दलित नारी यह सब शिक्षा के अभाव में सहती थी। इसीलिए लेखिका ने उच्च शिक्षा लेकर अपने समाज की बुराइयों को दूर करने का निर्णय लिया। लेखिका ज्यादा पढ़ रही थी इसलिए उनके सगे-सम्बंधी उनके माता-पिता को उनकी शादी करवाने के लिए ताने मारते थे, लेकिन माँ उन पर ध्यान न देकर लेखिका की पढ़ाई पर ध्यान देती थीं। 'विचारभूमि' कहानी में लेखिका ने उन्हें साहित्य लेखन की प्रेरणा कहाँ से और कैसे मिली उसका वर्णन किया है। दलित जीवन एवं नारी भावना को लेकर कविता करने का तथा कहानियाँ लिखने का शौक उन्हें शालेय जीवन से ही हो गया था। शादी के बाद भी उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा पूरी की। साहित्यकार का समाज के प्रति जो दायित्व है उसकी ओर ध्यान खींचते हुए वे लिखती है-"साहित्यकार की कलम में बहुत ताकत होती है। कलम तख्त और ताज बदल सकती है समाज की दशा भी कलम की धार से सुधारी जा सकती है। पिछड़े दलित समाज के लिए सभी साहित्यकारों को कलम की धार की आवश्यकता है, जो इनको सही स्थिति का एहसास दिलाकर दिलाकर सही दिशा दे सके।"[18]

'टूटता वहम' इस संग्रह की प्रतिनिधि कहानी है। सवर्ण समाज के प्रति लेखिका का जो भ्रम था वह कब और कैसे टूटता है उसका वर्णन इस कहानी में मिलता है। एक बार जब वे सह अध्यापिकाओं के साथ चाय की दुकान में बैठी थीं, तभी वहाँ एक सफाई करने वाली महिला आ जाती है, वह एक सवर्ण अध्यापिका के साथ बैठ जाती है तब वह अध्यापिका उसे इस प्रकार व्यंग्य करती है कि वह दूसरी बैंच पर जाकर बैठ जाती है। ब्राह्मण प्राध्यापिका सवर्ण अध्यापिका से सहमति जताते हुए कहती है- "क्या रे अच्छा लगता है क्या? अपने सामने बाई गंदगी साफ करती है और बिना नहाये-धोये अपने पास बैठे, यह तो सचमुच अच्छा नहीं लगता।"[19]

इसी प्रकार एक बार लेखिका के घर अन्य प्राध्यापिकाएँ बारी आने पर खाना खाने आती हैं तो केवल चार ही प्राध्यापिकाएँ आती हैं। उसमें से दो का व्रत था, दो ने खाना खाया ये निम्नवर्ग की स्त्रियां थी। 'अनुभूति के घेरे' डॉ. सुशीला टाकभौरे का कहानी संग्रह जो कि सन् 2011 में प्रकाशित हुआ है- 'अनुभूति के घेरे' यह स्त्री चेतना और संघर्ष का मूल स्वर लिए हुए है।

इस संग्रह की प्रथम कहानी 'भूख' मनुष्य के दो प्रकार की भूख-पेट की भूख और प्रेम की भूख को उजागर करती है। एक भिखारी दंपत्ति की एक दूसरे के प्रति जो प्रेम की संवेदना है ऐसी संवेदना आजकल संपन्न घराने के व्यक्तियों में देखने को नहीं मिलती।

"त्रिशूल' कहानी में एक नारी के अचेतन मन में पड़े हुए विचारों को शब्दबद्ध के द्वारा सामान्य नारी पर लादे गए बंधनों की बात की गई है । जिसकी वजह से वह किया गया है। 'सारंग तेरी याद में' कहानी में सौदामिनी नामक राजकुमारी के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है जो स्वतंत्र रूप से विचार नहीं कर सकती।

'दिल की लगी' कहानी में नारी जीवन के विभिन्न पहलू जैसे कि-प्रेम, दुःखभरी संवेदना तथा हर कदम पर संघर्ष आदि व्यक्त हुआ है। पुरुषी दंभ से परिपूर्ण पति को झेलते हुए मौसी कई साल बिता देती हैं, लेकिन जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तब मौसी अपने आपको स्वतंत्र करते हुए बारी-बारी से अपने रिश्तेदारों के घर पर रहने लगती थीं, जहाँ उनका बहुत मान-सम्मान था। मौसी से जब कोई इस बारे में प्रश्न करता तब उनका यही कहना था कि - "मेरे दिल की लगी तुम क्या जानो? इस बुढ़ापे में यहाँ वहाँ भटककर अपने दिल को नहला लिया करती हूँ। अब तो रिश्तेदारों से मिलते हुए मर जाऊँ, यही इच्छा है।"[20]

'हमारी सेल्मा' कहानी नारी के बदलते स्वभाव को व्यक्त करती है। नारी अपने अहं को नष्ट कर दे तो उसका जीवन खुशियों से भर जाएगा, सभी उससे लगाव बढ़ायेंगे। यही बात लेखिका ने सेल्मा के चरित्र से स्पष्ट की है।

'प्रतीक्षा' कहानी की नारीपात्र सुमन अपने प्रेमी से धोखा खाने के बाद आजीवन अविवाहित रहने का फैसला करती है। इतना ही नहीं धैर्यपूर्वक जीवन बिताकर वह पूरे विश्व से प्यार-भाव रखकर अपने समाज पर न्यौछावर होना चाहती है। शोषित वर्ग के उद्धार के लिए वह कार्य करना चाहती है।

'कैसे कहूँ कहानी में लेखिका को अपने आप पर गर्व महसूस होता है। साथ ही लेखिका को पाठक की ओर से मिला प्रेम-पत्र विचलित कर देता है। 'घर भी तो जाना है' कहानी में समाज की कामकाजी महिलाओं के जीवन की विसंगतियों का चित्रण है। घर और बाहर के काम को संभालते हुए नारी का जीवन बोझिल बन जाता है।

'बंधी हई राखी' कहानी में सामाजिक जीवन की हकीकत को व्यक्त किया गया है। लेखिका के विद्यालय के एक अध्यापक लेखिका को बहन बनाना चाहते हैं लेकिन लेखिका को झिझक है कि जहाँ वास्तविक भाई के रिश्ते नहीं संभाले जा सकते वहाँ बनाये गये भाई का रिश्ता संभलेगा कि नहीं। अंत में वे उसे राखी बांधती है।'गलती किसकी है' कहानी में दो सगी बहनों के संतानों पर लक्ष्य करके अच्छी परवरिश से संतान जीवन में आगे बढ़ सकते हैं-चाहें वह लड़का हो या लड़की-इस बात को बताया है। अनीता के तीन बेटे हैं लेकिन तीनों बुरी संगत में बिगड़ जाते हैं वहीं दूसरी ओर सुनीता ने तीनों लड़कियों को शिक्षित बनाकर व्यवहार कुशल बनाने जैसे उम्दा कार्य किये। इसमें गलती माता-पिता की है- यह बात लेखिका ने स्पष्ट किया है।

'सही निर्णय' कहानी में रुढ़ियों का तिरस्कार बताया गया है। इंदु जो कि एक अध्यापिका है दो बेटियाँ होने के बावजूद बेटा पाना चाहती है। गृहस्थी, पति, नौकरी और बच्चियों को संभालना जैसे अनेक काम वह स्वयं करती हैं। जब वह तीसरी बार गर्भवती है तो चिड़चिड़ापन का शिकार बनती है, और कहती है कि-"नहीं चाहिए मुझे अब कोई बच्चा । न कोई देखने वाला और न कोई संभालने वाला......सारी जिम्मेदारी मेरे ही ऊपर है, फिर मैं क्यों उठाऊँ अधिक बच्चों की परेशानी।"[21]

दूसरी ओर कुसुम को दस साल तक बच्चा नहीं होता तब वह एक लड़की को दत्तक लेकर उसे पालती है। इंदु के पति के मित्र भी लड़की को गोद लेकर उसका जन्मदिन उत्साह से मनाते हैं। इन घटनाओं को देखते हुए इंदु की बेटे की प्राप्ति की मानसिकता बदल जाती है और वह बेटियों को ही कुलदीपक बनाने का निर्णय करती है। 'टुकड़ा टुकड़ा शिलालेख' और 'सूरज के आसपास' नारी विमर्श को लेकर लिखी गई कहानियाँ हैं। 'टुकड़ा टुकड़ा शिलालेख' कहानी नारी के संवेदनशील पक्ष को लेकर लिखी गई है कि नारी के साथ कोई घटना घटती है तो वह उसे आसानी से भुला नहीं पाती। 'सूरज के आसपास' कहानी में कई प्रतीक आकर विषय का ताना-बाना बुनते हैं। डॉ. सुशीला टाकभौरे कहानी-लेखन के विषय में लिखती है कि "नारी को समता, सम्मान का अधिकार मिले और सामाजिक व्यवहारिक जीवन में स्त्री-पुरुष कदम से कदम मिलाकर बराबरी से चलें, वह मेरे लेखन का उद्देश्य है।"[22] डॉ. सुशीला टाकभौरे रचित एवं सन् 2015 में प्रकाशित कहानी संग्रह 'जरा समझो' की कहानियाँ दलित विमर्श और स्त्री-विमर्श को केन्द्र में रखकर लिखी गई हैं। इस कहानी संग्रह के शीर्षक के विषय में लेखिका का कहना है कि "जरा समझो' शीर्षक उद्बोधनकारी है। इसके माध्यम से समाज के लोगों को समझाने का उपक्रम किया गया है। समझना सभी वर्ग के लोगों को है चाहे वह मैनेजर हो, अजय पंडित, विजय यादव हो या स्वयं खेमचंद।"[23]

'इस संग्रह की 'सिलिया', 'बदला' तथा 'सूरज के आसपास' कहानियाँ पहले के कहानी संग्रहों में आ चुकी है। इस संग्रह की प्रथम कहानी 'आतंक के साये में' शोला नामक दलित नारी की आत्मकथात्मक कहानी है। इस कहानी में उसे ब्राह्मण लड़के प्रकाश द्वारा बार-बार यह एहसास दिलाया जाता है कि वह निम्नवर्ग से है। शोला पढती है, नौकरी करती है, घर की जिम्मेदारियाँ संभालती है लेकिन अब उसके जीवन का ऐसा वक्त है कि उसकी सोच बदली है। जो इस प्रकार है- " मैं दलित समाज के बारे में सोचने लगी हूँ। विषमतावादी, जातिवादी समाज-व्यवस्था के बारे में विचार करने लगी हूँ। जाति-व्यवस्था के विरोध में तर्क-वितर्क देने लगी हूँ।"[24]

शोला के इस कार्य एवं सोच का उच्चवर्गीय लोगों द्वारा विरोध भी हुआ। कुछ सवर्ण लोगों की आँखें शोला को हमेशा घूरती रहती हैं जिससे शोला को आतंक के साये में जीने के लिए मजबूर होना पड़ा है। बहुत वर्षों बाद उससे मिलता है और जातिभेद को न मानते हुए उससे शादी करने की बात करता है। शोला जब उसकी इस बात को मात्र दिखावा बताती है, तब प्रकाश शोला का अपमान करते हुए बोला- "मूर्ख तुमने अपने आपको क्या समझ लिया है?.......क्या मैं सचमुच तुमसे विवाह कर लूंगा? कहाँ तुम ? कहाँ मैं? तुम्हारी मेरी कभी कोई बराबरी नहीं हो सकती। तुम जहाँ पहले थी, मेरे लिए आज भी वहीं हो, चौथे क्रमांक से भी नीचे, सबसे अन्तिम क्रमांक पर..... .अन्त्यज, अछूत.......।"[25] उसके बाद प्रकाश की आकस्मिक मृत्यु हो जाती है और शोला आतंक के साये से मुक्त हो जाती है।

'जरा समझो' इस संग्रह की प्रमुख कहानी है। इस कहानी का प्रारम्भ अजय नामक एक सामान्य क्लर्क के गाड़ी से 'जय श्रीराम' की धुनवाले होने से प्रारम्भ होती है। अजय को उसका मैनेजर समझाता है। कि इस प्रकार का रखने से दुर्घटना घट सकती है तथा उसे इस हॉर्न को बदलना चाहिए। मैनेजर को अपनी जाति कोंकणस्थ चितपावन ब्राह्मण होने का गर्व है। अजय पंडित भी उसी जाति का था। मैनेजर बार-बार उसे समझाते हैं कि उसे अपनी जाति पर अभिमान होना चाहिए। मैनेजर द्वारा बार-बार ऐसा कहने पर एक बार अजय गुस्से से कहता है- "सर, कोंकणस्थ हो या कहीं का भी हो, सबसे पहले इंसान होना जरूरी है। मैं इंसान को महत्व देता हूँ, फिर वह किसी भी क्षेत्र का हो, किसी भी जाति का हो या किसी भी धर्म का हो- इंसान होना जरूरी है-"[26] खेमचन्द ओर विजय बाबू ने अजय का समर्थन किया तो मैनेजर शांति से वहाँ से निकले। उस दिन के बाद उन्होंने अजय से जाति के विषय में कुछ नहीं कहा।

आफिस का चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी खेमचन्द सफाई कर्मी और चपरासी दोनों की भूमिका निभाता है। आफिस की सवर्ण महिलाएँ और मैनेजर उससे छुआछूत का भेदभाव करते हैं। ओबीसी कोटे का विजय जैसे तो चपरासी के तौर पर नियुक्त हुआ था, लेकिन एच.एस.सी पास होने के कारण उसे बाबू का कार्यभार सौंपा गया था। यहाँ पर खेमचंन्द और विजय का शारीरिक और मानसिक शोषण दिखाई देता है। खेमचंद कभी गुस्से में कह देता है-"ये जात-पात इंसानों ने बनाये हैं और कहते हैं, जात पात भगवान ने बनाई है। कहाँ है भगवान? हमारे काम का बँटवारा जिन्होंने किया है, यदि उनसे ये काम करवाये जाएँ तो कैसा लगेगा?"[27]

खेमचन्द यह सपना देखता है कि वह पढ़ लिखकर आफिस का मैनेजर बन गया है तथा अपनी गाड़ी का हार्न उसने 'जय भीम... जय भीम....जय भीम..... रखा है। वह अपने आपको समझाता है कि उच्च वर्ग के व्यक्तियों जैसा सम्मान पाने के लिए उनकी बराबरी करनी पड़ेगी, जो उच्च शिक्षित होकर ऊँचे पदों पर सम्मान की नौकरी द्वारा संभव है। 'कड़वा सच' कहानी लेखिका की आत्मकथात्मक कहानी है, जिसमें उन्हें उनके लेखन के विषय के प्रति एक विद्वान पुरुष सचेत करते हैं। लेखिका कहानियाँ लिखती थीं, लेकिन परम्परागत रीति-रिवाजों में बंधी भारतीय नारी का चित्रण अपनी कहानियों में अधिकतर करती थी, लेकिन विद्वान पुरुष सुधीरजी उन्हें समझाते हुए कहते हैं- "यह जो आपकी नारी है, उसे अंतर्मुखी मत बनाओ। यह जो पाना चाहती है, उसे पाने दो। उस पर अपने विचार मत लादो, उस पर सामाजिकता नैतिकता के परम्परावादी आदर्श मत लादो। उसे मानसिक रूप से मुक्त रखो-ऐसा उसे दर्शाओ। क्योंकि बीमार मानसिकता रखने से अच्छा है, वह अपने जीवन में जो चाहे-पा ले, या जैसा चाहे कर ले। घुट-घुटकर मरने के लिए किसी नारी को मजबूर करना, यह कौन-सी सामाजिकता है?........कुंठित, बीमार मानसिकता रखने वाली नारी संपूर्ण नारी समाज के लिए एक आदर्श बनी रहे, क्या आप इसे ठीक समझती हैं?"[28]

उनकी बातों से नारी के प्रति समाज का जो कड़वा सच है उसे लेखिका समझकर उसे अपनी कहानियों में उतारने का प्रयास करती है, साथ ही उन्हें अफसोस भी होता है कि उनका ध्यान नारी की प्रगतिशील स्थिति की तरफ क्यों नहीं गया?

'साक्षात्कार' कहानी में एक दलित कार्यकर्ता प्रतिभा नाम की स्त्री की गाथा है। जो घर-परिवार, नौकरी और समाज सुधार के कार्य में अपना जीवन उलझा देती है। जब उसका साक्षात्कार उमाकान्त जी लेने आते हैं तो काम के असमंजस में वह एक भी प्रश्न का उत्तर ठीक से नहीं दे पाती है। भौतिक सुविधाओं के अभाव में भी वह लेखन और भाषण के क्षेत्र में अपना नाम बनाती है, और पुरस्कार पाने योग्य कार्य करती है।

'वह नजर' कहानी में लेखिका ने पुरुष एवं स्त्री की विभिन्न दृष्टिकोणों वाली नजर के बारे में विस्तृत चर्चा की है। कभी-कभी कई नजरों का ऐसा मतलब निकाल लिया जाए, जिसका मतलब स्पष्ट रूप से कुछ न हो तो रोजिंदी जिन्दगी में उसका और मन पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है उसका विश्लेषण इस कहानी में किया गया है। ' रामकली ' कहानी में घुमक्कड़ जाति के दलित जीवन उसमें भी संघर्ष युक्त नारी के जीवन की कथा रामकली नामक लड़की के माध्यम से बताई गई है। संक्षेप में नारी को उच्च स्थान मिले तथा सभी दृष्टि से समानता आए - उनकी यात्राओं के पीछे ,उनके लेखन के पीछे यही उद्देश्य रहा है। उनका ध्यान साहित्य और समाज से जुड़े स्वयं के विचार को विस्तार करना रहा है। उनकी कहानियों में स्त्री चेतना तथा संघर्ष को उजागर करने का प्रयास मैंने इस लेख में किया है।

सन्दर्भ - सूची :-

1. हाशिए की वैचारिकी .संपादक .उमाशंकर चौधरी .लेख ज्योतिबा फूले.पृ .17.18
2. द स्टूडेंट इंग्लिश डिक्शनरी .संपादक .आपट . व्ही. एस. पृ.199
3. दसवें दशक के महिला उपन्यासकारों के उपन्यास में नारी चेतना . वासानी कृष्ण बंटी.पृ.14- 42 उद्धृत
4. वही
5. वही
6. वही
7. संघर्ष कहानी संग्रह .सुशीला टाकभौरे .पृ .16
8. वही .पृ.27
9. वही .पृ.48
10. वही .पृ.52
11. वही .पृ.73
12. वही .पृ .83
13. वही .पृ.104
14. टूटता वहम कहानी संग्रह .सुशीला टाकभौरे .भूमिका से
15. वही.पृ.15
16. वही .पृ.22
17. वही .पृ .31
18. वही .पृ.38
19. वही .पृ.42
20. अनुभूति के घेरे .कहानी संग्रह .सुशीला टाकभौरे .पृ.40
21. वही .पृ.78
22. वही .भूमिका से
23. जरा समझो कहानी संग्रह .सुशीला टाकभौरे .पृ.भूमिका से
24. वही .पृ .12
25. वही .पृ.18
26. वही .पृ.21
27. वही .पृ.25
28. वही .पृ.51

कौशांबी में बौद्ध दर्शन एवं कला : अध्ययन एवं विश्लेषण

जूली सोनकर*
प्रो. भावना चौहान**

सारांश:

कौशांबी प्राचीन भारत के उन महान सांस्कृतिक नगरों में से एक है जिसने धर्म, दर्शन और कला का अद्भुत समन्वय स्थापित किया| बौद्ध, जैन तथा वैदिक परंपराओं के समागम ने कौशांबी को भारतीय सभ्यता के बहुआयामी विकास का प्रतीक बना दिया| बौद्ध धर्म एवं दर्शन के प्रमुख केंद्र के रूप में कौशांबी ने न केवल आध्यात्मिक चेतना को विकसित किया अपितु भारतीय कला एवं स्थापत्य को भी नई दिशा प्रदान की| प्रस्तुत शोध-पत्र "कौशांबी में बौद्ध दर्शन एवं कला : एक ऐतिहासिक एवं दार्शनिक अध्ययन" में कौशांबी की बौद्ध दार्शनिक चिंतन एवं बौद्ध कला की कलात्मक अभिव्यक्तियों का समुचित अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है|

मुख्य शब्द:- कौशांबी, बौद्ध दर्शन, बौद्ध कला ,स्तंभ, स्तूप , विहार, मूर्तिकला

भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में कुछ नगर केवल भौगोलिक इकाईयों के रूप में नहीं रहे, अपितु वे धर्म, दर्शन और कला की जीवंत परंपराओं के वाहक भी बने| कौशांबी ऐसा ही एक प्राचीन नगर है, जिसने बौद्ध धर्म के विकास, दार्शनिक चिंतन की अभिव्यक्ति तथा कला की आध्यात्मिक चेतना को एक विशिष्ट स्वरुप प्रदान किया| वत्स महाजनपद की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध कौशांबी प्राचीन काल में राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का महत्पूर्ण केंद्र था| पाली बौद्ध साहित्य, पुरातात्विक अवशेष तथा चीनी यात्रियों के वृत्तांतो से ज्ञात होता है कि कौशांबी में बौद्ध धर्म की जड़े गहरी थीं|गौतम बुद्ध के आगमन एवं उनके उपदेशों ने इस क्षेत्र को विशिष्ट धार्मिक महत्व प्रदान किया| साथ ही, यहाँ से प्राप्त स्तूप, विहार, मूर्तिकला एवं स्थापत्य अवशेष यह प्रमाणित करते है कि कौशांबी में बौद्ध कला का उल्लेखनीय विकास हुआ था| इन कलात्मक अवशेषों में निहित आध्यात्मिकता, प्रतिकात्मका एवं दार्शनिक तत्व बौद्ध संस्कृति की गहन वैचारिक परंपरा को अभिव्यक्त करते है| तथा इस पुरास्थल को 1861 ईस्वी में एलेक्जेंडर कनिंघम द्वारा प्रकाश में लाया गया| वर्तमान में कौशांबी उत्तर प्रदेश के प्रयागराज जिले के मंझनपुर तहसील के 'कोसम इनाम' और 'कोसम खिराज' नामक गावों के बीच में प्रयागराज शहर से दक्षिण-पश्चिम दिशा में लगभग 52 किमी की दूरी पर यमुना नदी के बायें किनारे पर स्थित है|

बौद्ध धर्म एवं दर्शन के प्रमुख केन्द्र के रूप में प्राचीन काल में कौशांबी समृद्ध नगर था। यहाँ पर बौद्ध भिक्षुओं का एक प्रमुख संघ था जहाँ पर भगवान बुद्ध ने अपना वर्षावास व्यतीत किया। गौतम बुद्ध ने अपने छठे एवं नौवें वर्षावास में कौशांबी में प्रवास किया एवं भिक्षुगण को उपदेश दिया। बुद्ध के समय में ही कौशांबी में भिक्षुओं में कलह उत्पन्न हो गई थी, जिसका वर्णन विभिन्न बौद्ध ग्रन्थों में विस्तार से मिलता है। भिक्षुओं में कलह का मूल कारण संघ के नियमों में उत्पन्न विभेद को लेकर था| कुछ भिक्षु बनाए गए नियमों से विरत हो गए थे, जिसपर एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से भिक्षुओं के झगड़े को शांत करने के लिए कहा। बुद्ध भिक्षुओं के समीप आए और उन्हें दीर्घायु जातक के माध्यम से कलह न करने का उपदेश दिया।[1] यही भगवान बुद्ध ने छन्न को ब्रह्मदंड दण्ड दिया था।[2] ब्रह्म दण्डादेश को सुनकर की अब कोई भिक्षु उनसे नहीं

* शोध छात्रा, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज, प्रयागराज
** शोध निर्देशिका, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

बोलेगा, छन्न अचेत हो गये, लेकिन शीघ्र ही अप्रमाद, उद्योग और एकान्तचर्या से छन्न ने अर्हत का पद प्राप्त कर लिया। अर्हत्व प्राप्त करते ही वे ब्रह्मदण्ड से मुक्त हो गए।

कौशांबी में ही भगवान बुद्ध ने उदयन और उनकी रानियों को उपदेश दिया था। जब भिक्षु संघ सहित भगवान बुद्ध कौशांबी पहुंचे, तो उदयन ने यह इच्छा प्रकट किया कि उनके रनिवास की स्त्रिया आन्नद का दर्शन करना चाहती है। उदयन की रानियों ने आनंद को पांच सौ चीवर भेंट किए| चीवर प्राप्त होने पर उदयन ने आन्नद से कहा आनन्द इतने चीवरो का आप क्या करेंगे ! तब आन्नद ने कहा महाराज ! जो फटे चीवर वाले भिक्षु है उन्हें बांटेंगे, फिर उदयन ने पूछाँ ! जो पुराने चीवर है, उन्हें क्या करेंगे, तब आन्नद ने कहा महाराज ! उनसे हम गद्दे का गिलाफ बनायेंगे। उदयन ने फिर पूछा कि जो पुराने गद्दे के गिलाफ है उन्हें क्या करेंगे ! आन्नद ने कहाँ उनसे हम फर्श बनायेगे|[3] इस संवाद को बताने का तात्पर्य यह है कि भिक्षु संघ किसी भी दान में प्राप्त हुई वस्तु का दुरुपयोग नहीं करते थे, और नई वस्तु प्राप्त होने पर पुरानी वस्तु का भी समुचित उपयोग किया करते थे।

द्वितीय बौद्ध संगीति के उपरांत बौद्ध संघ के पश्चिमी और पूर्वी गुट में विभाजन हो गया था। पूर्वी गुट में मगध एवं वैशाली के भिक्षु शामिल थे। मगध के भिक्षुओं के पूर्वी गुट ने दस नये नियमों को अपना लिया था, जो कौशांबी एवं अवंती के भिक्षुओं को अमान्य था| मगध के भिक्षुओं ने जो दस नए नियम बनाए थे उनमें से एक यह था कि जहाँ नमक का अभाव होने की आशंका हो वहां के भिक्षु सींगों में नमक भरकर ले जा सकते है। जबकि पश्चिमी गुट के अनुसार गौतम बुद्ध ने श्रावस्ती में कहे गए 'सुतविभंग' में सारीपुत्र को ऐसा करने से मना किया था।[4]

कौशांबी में प्राप्त बौद्ध मूर्तियां, स्तूप, विहार तथा अन्य कलात्मक अवशेष इस तथ्य के प्रमाण है कि यहाँ कला को केवल सौंदर्य प्रदर्शन का माध्यम नहीं माना गया, बल्कि उसे बौद्ध दर्शन की अभिव्यक्ति का साधन बनाया गया | यहाँ से विहार, स्तूप, मूर्ति, मृदभाण्ड, सिक्के, मुहरे, मनके, अभिलेख इत्यादि के पर्याप्त प्रमाण मिलते है। बौद्ध ग्रंथ महावग्ग[5] में कौशांबी और घोषिताराम विहार का वर्णन प्राप्त होता है| प्रारंभिक बौद्ध परम्परा के अनुसार गौतम बुद्ध यहाँ दो बार आये एवं यहाँ घोषित नामक सेठ के आमंत्रण पर तथागत तथा भिक्षुओ के ठहरने के लिए जिस विहार का निर्माण करवाया गया था वह निर्माता के नाम पर घोषिताराम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। घोषिताराम विहार के उत्खनन से हारीति, गजलक्ष्मी और कुबेर की मिट्टी की आदमकद विशाल मूर्तियां मिली है।[6] गजलक्ष्मी की मूर्ति को गज द्वारा अभिषेक किये जाने के कारण ही 'गजलक्ष्मी या गजा अभिषेकलक्ष्मी' कहा जाता है।[7] मिट्टी से बना पुरुष-सिर घोषिताराम विहार में स्थित हरीति के मन्दिर की खुदाई के उपरांत मिला था। उल्लेखनीय है कि हारीति और कुबेर की मूर्तियाँ सामान्यतः एक साथ ही मिली है, कौशांबी में ही अशोक के शासनकाल में दो स्तंभ स्थापित किए गए थे। एक स्तंभ मुगलकाल में कौशांबी से हटा कर प्रयाग लाया गया तथा संगम तट पर स्थित किले के भीतर स्थापित किया गया।[8] अशोक का दूसरा स्तंभ कौशांबी में अब भी मौजूद है जिसका ऊपरी हिस्सा इलाहाबाद संग्रहालय में सुरक्षित है। कौशांबी पुरास्थल के तीन ओर रक्षा-प्राचीर के अवशेष मिले है, रक्षा प्राचीर से पता चलता है कि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व की आरम्भिक शताब्दियों में यहाँ हड़प्पा के आधार पर भव्य सुरक्षा प्राचीरयुक्त नगर का विकास हुआ था जबकि उस काल में गंगा घाटी के मैदानी भाग में नगरों का विकास नहीं हो पाया था| यही से 'श्येनचिति' का भी साक्ष्य मिला है, जिसे सम्भवतः पुरुषमेध यज्ञ के लिए बनवाया गया था। श्येनचिति का अर्थ बाज (श्येन) के आकार की वेदी (चिति)।

कौशांबी से प्राप्त पत्थर के तोरणखण्ड (सिरदल) पर गजलक्ष्मी, वृषभ, स्वास्तिक, यक्ष तथा मकर उत्तीर्ण हैं। यह तोरणखण्ड पहली सदी ई० पू० की पाषाण मूर्तिकला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ की पाषाण मूर्तियाँ पाटलिपुत्र, मथुरा या सारनाथ की मूर्तियों की तरह ही मूलतः शासक वर्ग और जनसामान्य की धार्मिक भावनाओं का बहुविध प्रस्तुतीकरण है। कुषाणकालीन प्रतिमाओं में कौशाम्बी से प्राप्त सिर-विहीन बोधिसत्व की

प्रतिमा बहुत महत्वपूर्ण है। इस पर उत्कीर्ण लेख के अनुसार इस प्रतिमा की स्थापना महाराज कनिष्क के शासनकाल के दूसरे वर्ष में की गयी थी।

यहाँ निर्मित मृण्मूर्तियाँ भी पाषाण मूर्तियों की ही भाँति महत्वपूर्ण और आकर्षक है। गंगा घाटी के विभिन्न कला केन्द्रों में बनी मूर्तियो में कौशांबी में बनी मूर्तियों का दर्जा सबसे ऊपर है।[9] इनमें मौर्यकालीन मातृ देवियाँ, अलंकरणयुक्त शुंगकालीन मृण्मूर्तियां, खिलौना - गाड़ी और रथ की सवारी, मदिरापान आदि लोक जीवन से जुड़े विविध दृश्यों का अंकन भी देखने को मिलता है। एक मृत्फलक पर वत्सराज उदयन को अवन्ति देश की राजकुमारी का हरण करते हुए दिखाया गया है। कुषाणकालीन मृण्मूर्ति में एक ऐसे मनुष्य का धड़ दिखाया गया है, जिसकी आँते खुली हुई है। इस मृण्मूर्ति का निर्माण सम्भवतः शल्यचिकित्सा के मॉडल के रूप में किया गया होगा।[1] शुंगकाल के विविध मनोरंजन दृश्यों वाले कई मृत्फलक कौशांबी से प्राप्त हुए है, जिनमें आसव-पान करते हुए स्त्री -पुरुष, पंखयुक्त सिंहों से लड़ता हुआ पुरुष और चार पहिये वाली गाड़ी पर खड़े हाथी को घसीटता हुआ दृश्य विशेषय महत्वपूर्ण है।

कौशांबी से चाँदी और ताँबे की आहत सिक्कों के अलावा ढलवा सिक्के भी मिले है। कुषाणों और मघो के साथ ही स्थानीय शासकों के सिक्के भी यहाँ से मिले हैं 'गज़ाभिषेक लक्ष्मी' प्रकार की ताम्र-मुद्रा कौशाम्बी से (दूसरी शताब्दी ई०) की मिली है तथा राजा, पर्वत, विजय मिश्र तथा शतमित नामक राजाओं के मुद्रांकन भी मिले है, इन्हें इलाहाबाद संग्रहालय में संरक्षित किया गया है।

यह नगर गौतम बुद्ध के जीवन काल में ही बौद्ध गतिविधियों का प्रमुख केंद्र बन चुका था। पाली ग्रंथों में वर्णित घोषिताराम विहार तथा अन्य विहार की स्थापना से स्पष्ट होता है कि यहाँ संघ जीवन सुदृढ़ एवं संगठित था दार्शनिक दृष्टिकोण से कौशांबी ने मध्यम मार्ग, अनित्य अनात्म और प्रतीत्यसमुत्पाद जैसे सिद्धांत के प्रचार-प्रसार में सक्रिय भूमिका निभाई। यहाँ होने वाले उपदेशों और संघीय चर्चाओं ने बौद्ध चिंतन को व्यवहारिक धरातल प्रदान किया| यह नगर व्यापारिक मार्गों से जुड़ा होने के कारण बौद्ध विचारधारा के व्यापक प्रसार का माध्यम भी बना, जिससे बौद्ध धर्म का सामाजिक आधार सुदृढ़ हुआ।

समग्रतः कौशांबी बौद्ध दर्शन और कला के समन्वित विकास का जीवंत केंद्र था| यहाँ धर्म-दर्शन और कला का ऐसा त्रिवेणी संगम दिखाई देता है जिसने न केवल स्थानीय स्तर पर बल्कि व्यापक भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में भी स्थायी प्रभाव छोड़ा| अतः कौशांबी को बौद्ध दर्शन एवं कला के इतिहास में एक केंद्रीय और सशक्त अध्याय के रूप में स्थापित करना पूर्णतः समीचीन है।

सन्दर्भ :

1. महावग्ग,10/1/7
2. चुल्लवग्ग,1/5/2-3
3. वही,11/4/1
4. वहीं,12/1/2
5. महावग्ग,10/1/1
6. शर्मा, जी. आर. 'द एक्सकंवेंशन ऑफ कौशांबी' 1957-1959, पृष्ठ 63
7. श्रीवास्तव ए. एल - शुंग कला में विविध स्वरूपा श्री लक्ष्मी, शुंग कला संपादक डॉ एस डी. त्रिवेदी, इलाहाबाद संग्रहालय इलाहाबाद,1991, पृष्ठ 81-82
8. समराङ्गणसूत्रधार,34/27
9. पाण्डेय, सुनीति; मध्य गंगा घाटी की प्राचीन भारतीय मृण्मूर्तियों का सांस्कृतिक अध्ययन इलाहाबाद 2007, मिश्रा, विभा, शर्मा० जी० आर० 1980, हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री पृष्ठ,10
10. कुमार, निर्मलेन्दु; कौशांबी प्राचीन भारत का एक गौरवशाली नगर, लोक भारती पेपरबैक्, प्रथम संस्करण; 2019, पृष्ठ141

विद्यालयों में बालिका उपिस्थिति में कन्या उत्थान योजना का प्रभाव : बिहार के सन्दर्भ में

डॉ. सुहाशनी कुमारी*

शोध सार –

प्रस्तुत शोध "विद्यालयों में बालिकाओं की उपिस्थिति में कन्या उत्थान योजना का प्रभाव : बिहार के सन्दर्भ में" है। लड़कियों की शिक्षा में इस आर्थिक सहयोग ने न केवल परिवारों को बेटियों की पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रेरित किया है, बल्कि समाज में भी बेटियों के महत्व को बढ़ाया है। लड़कों की उपस्थिति में इस योजना का प्रभाव सामाजिक तुलना के रूप में देखा जाता है, जहाँ लड़के कभी-कभी इसे असमानता मानते हैं वहीं समाज इसे बहुत महत्वपूर्ण पहल मानती है। यह योजना शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक संतुलन स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो रही है।

योजना का परिचय - बिहार में लंबे समय से लड़कियों की शिक्षा दर अपेक्षाकृत कम रही है। सामाजिक और आर्थिक कारणों से लड़कियाँ अक्सर उच्च शिक्षा से वंचित रह जाती थीं। बाल विवाह, गरीबी, और पारंपरिक सोच ने लड़कियों की शिक्षा को सीमित कर दिया था। ऐसे परिदृश्य में मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना का आगमन हुआ, जिसने शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए आर्थिक सहयोग का मार्ग चुना। यह योजना लड़कियों को पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रेरित करती है और परिवारों को यह संदेश देती है कि बेटियों की शिक्षा में निवेश करना राज्य और समाज के लिए लाभकारी है।

कन्या उत्थान योजना का मुख्य उद्देश्य जन्म से लेकर स्नातक तक लड़कियों को आर्थिक सहायता देना ताकि वे पढ़ाई बीच में न छोड़ें और आत्मनिर्भर बन सकें।

बिहार में मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना एक ऐसी महत्वाकांक्षी पहल है जिसने शिक्षा और लैंगिक समानता के क्षेत्र में नई दिशा प्रदान की है। इस योजना का मूल उद्देश्य लड़कियों को जन्म से लेकर स्नातक तक आर्थिक सहायता प्रदान करना है ताकि वे शिक्षा के मार्ग में आने वाली आर्थिक बाधाओं को पार कर सकें और आत्मनिर्भर बन सकें। योजना के अंतर्गत इंटर पास करने पर ₹25,000 और स्नातक पास करने पर ₹50,000 की राशि सीधे बैंक खाते में स्थानांतरित की जाती है। यह व्यवस्था न केवल पारदर्शिता सुनिश्चित करती है बल्कि परिवारों को भी बेटियों की शिक्षा को प्राथमिकता देने के लिए प्रेरित करती है।

बिहार में मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना ने लड़कियों की शिक्षा और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया है, लेकिन छात्राओं की उपस्थिति में इसका प्रभाव सामाजिक तुलना और लैंगिक संतुलन पर भी देखा गया है। यह योजना लड़कियों को आर्थिक सहायता देकर उन्हें पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रेरित करती है, जिससे लड़कों और लड़कियों के बीच शिक्षा का अंतर कम हो रहा है।

योजना का उद्देश्य और प्रभाव जिससे लड़कियां इन योजनाओं का लाभ उठा रही है ।

लाभ: मेट्रिक पास करने पर 10000

इंटर पास करने पर ₹25,000

स्नातक पास करने पर ₹50,000

DBT (Direct Benefit Transfer) के माध्यम से सीधे बैंक खाते में राशि भेजी जाती है।

प्रभाव लड़कियों की कक्षा में उपिस्थिति बढ़ी है एवं शिक्षा दर में वृद्धि हुई है।

कम उम्र में शादी का दबाव कम हुआ है।

परिवारों में बेटियों की पढ़ाई को प्राथमिकता मिलने लगी है।

* समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय बोधगया

Email- singhsuhashin28@gmail.com Mob No 9334269315

कन्या उत्थान योजना लागु होने के बाद बालिकाओं की उपस्थिति में प्रभाव

वर्तमान समय में बालिकाओं की उपिस्थिति में व्यापक बढ़ोतरी हुई है । लड़कों को इस योजना का लाभ नहीं मिलता, जिससे कई बार असमानता की चर्चा होती है। परन्तु इस योजना का मुख्य उद्देश्य बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन देना है । यह योजना शुरू होने के बाद विद्यालयों में लैंगिक हो संतुलन में कभी कभी दिक्कत आती **है** । लड़कियों को विशेष सहायता मिलने से कक्षा में उनकी संख्या बढ़ रही है, जिससे लड़कों और लड़कियों का अनुपात संतुलित हो रहा है।

प्रेरणा: लड़कों में भी पढ़ाई के प्रति प्रतिस्पर्धा और प्रेरणा बढ़ती है, क्योंकि वे देखते हैं कि लड़कियों को शिक्षा से आर्थिक लाभ मिल रहा है।

सामाजिक दृष्टिकोण: लड़कियों की शिक्षा को लेकर समाज में सकारात्मक सोच विकसित हो रही है, जिससे लड़कों के बीच भी सहयोग और सम्मान की भावना बढ़ रही है।

- **सीमित लाभ**: एक परिवार की केवल दो बेटियों को ही लाभ मिलता है।

कन्या उत्थान योजना ने बिहार में लड़कियों की शिक्षा को नई दिशा दी है। लड़कों की उपस्थिति में इसका प्रभाव यह है कि शिक्षा का माहौल अधिक प्रतिस्पर्धी और संतुलित हो गया है। आज भी असमानता की भावना और तकनीकी चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। बिहार में मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना ने लड़कियों की शिक्षा और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया है, लेकिन बालिका की उपस्थिति में इसका प्रभाव सामाजिक तुलना और लैंगिक संतुलन पर भी देखा गया है। यह योजना लड़कियों को आर्थिक सहायता देकर उन्हें पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रेरित करती है, जिससे लड़कों और लड़कियों के बीच शिक्षा का अंतर कम हो रहा है। मुख्यमंत्री कन्या उत्थान *योजना* ने लड़कियों की शिक्षा दर और आत्मनिर्भरता में उल्लेखनीय वृद्धि की है। लड़कों की उपस्थिति में यह योजना सामाजिक तुलना को जन्म देती है, लेकिन दीर्घकाल में यह लैंगिक संतुलन और शिक्षा के अवसरों में समानता को बढ़ावा देती है।

लड़कियों पर प्रभाव

इस योजना का सबसे बड़ा प्रभाव लड़कियों की शिक्षा दर पर पड़ा है। पहले जहाँ कई लड़कियाँ इंटर या स्नातक स्तर पर पढ़ाई छोड़ देती थीं, अब वे आर्थिक सहायता मिलने के कारण पढ़ाई जारी रख रही हैं। इससे न केवल उनकी शिक्षा दर बढ़ी है बल्कि आत्मनिर्भरता की भावना भी विकसित हुई है। लड़कियाँ अब उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हैं और रोजगार के अवसरों की ओर अग्रसर हो रही हैं। योजना ने बाल विवाह की प्रवृत्ति को भी कम किया है क्योंकि परिवार अब बेटियों की पढ़ाई को प्राथमिकता देने लगे हैं।

लड़कों की उपस्थिति में प्रभाव

लड़कों की उपस्थिति में इस योजना का प्रभाव सामाजिक तुलना और प्रतिस्पर्धा के रूप में देखा जाता है। लड़कों को इस योजना का लाभ नहीं मिलता, जिससे कभी-कभी असमानता की भावना उत्पन्न होती है। परन्तु , यह योजना शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक संतुलन स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो रही है। लड़कियों की संख्या कक्षा में बढ़ने से लड़कों और लड़कियों के बीच अनुपात संतुलित हुआ है। लड़के भी देखते हैं कि लड़कियों को शिक्षा से आर्थिक लाभ मिल रहा है, जिससे उनमें भी पढ़ाई के प्रति प्रतिस्पर्धा और प्रेरणा बढ़ती है।

सकारात्मक परिणाम

इस योजना ने कई सकारात्मक परिणाम दिए हैं।

- बाल विवाह की प्रवृत्ति में कमी आई है। जिसका प्रभाव समाज में दिखाई दे रहा है। कन्या उत्थान योजना से लड़कियों की उच्च शिक्षा में भागीदारी बढ़ी है। वर्तमान समय में परिवारों में बेटियों की पढ़ाई को प्राथमिकता मिलने लगी है। समाज में लड़कियों की शिक्षा को लेकर सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हुआ है।

- आज लड़कियां निडर होकर कार्य कर रही है जिससे आत्मनिर्भरता बढ़ी है और वे रोजगार के अवसरों की ओर अग्रसर हो रही हैं।

चुनौतियाँ : हालांकि योजना का प्रभाव सकारात्मक है, लेकिन कुछ चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

- लड़कों में असमानता की भावना बनी हुई है क्योंकि उन्हें समान आर्थिक सहायता नहीं मिलती।
- तकनीकी समस्याएँ जैसे पोर्टल पर डेटा अपलोड में देरी और बैंकिंग प्रक्रियाओं में कठिनाई।
- योजना का लाभ केवल दो बेटियों तक सीमित है, जिससे बड़े परिवारों में असंतोष की स्थिति उत्पन्न होती है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता की कमी के कारण कई परिवार योजना का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।
- प्रस्तुत अध्ययन में पाया गया कि योजना ने बाल विवाह की प्रवृत्ति को कम किया है, लड़कियों की उच्च शिक्षा में भागीदारी बढ़ाई है, और समाज में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया है। यद्यपि कुछ चुनौतियाँ जैसे तकनीकी समस्याएँ, सीमित लाभ (केवल दो बेटियों तक), और लड़कों में असमानता की भावना बनी हुई है, फिर भी योजना का समग्र प्रभाव सकारात्मक है। मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना ने बिहार में शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक समानता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठा या है। लड़कियों की शिक्षा और आत्मनिर्भरता में वृद्धि के साथ-साथ लड़कों की उपस्थिति में यह योजना प्रतिस्पर्धा और प्रेरणा का वातावरण भी निर्मित कर रही है।

योजना को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए कुछ नीतिगत सुझाव दिए जा सकते हैं।जैसे

- लड़कों के लिए भी समान अवसर प्रदान किए जाएँ ताकि असमानता की भावना कम हो।
- तकनीकी सुधार किए जाएँ ताकि लाभार्थियों को समय पर सहायता मिल सके।
- यजना का लाभ दो से अधिक बेटियों तक बढ़ाया जाए।
- ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता अभियान चलाए जाएँ ताकि अधिक से अधिक कन्या उत्थान योजना का लाभ उठा सकें।
- शिक्षा के साथ-साथ कौशल विकास कार्यक्रम भी जोड़े जाएँ ताकि लड़कियाँ रोजगार के अवसरों का लाभ उठा सकें।

सन्दर्भ सूची

1. दैनिक जागरण. (2023, जून 12). कन्या उत्थान योजना: स्नातक उत्तीर्ण *छात्राओं को 50,000 रुपये की प्रोत्साहन राशि.* Retrieved from दैनिक जागरण
2. हिन्दुस्तान. (2022, दिसम्बर 5). *मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना: जन्म से स्नातक तक बेटियों को आर्थिक सहायता.* Retrieved from हिन्दुस्तान
3. दैनिक जागरण दरभंगा संस्करण. (2021, अगस्त 20). *कन्या उत्थान योजना के लिए विश्वविद्यालयों को डेटा अपलोड करने का निर्देश.* Retrieved from दरभंगा संस्करण
4. महासरकारी योजना ब्लॉग. (2024, जनवरी 10). *मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना: पात्रता, लाभ और आवेदन प्रक्रिया.* Retrieved from महासरकारी ब्लॉग
5. बिहार जॉब पोर्टल. (2023, सितम्बर 15). *कन्या उत्थान योजना: स्नातक पास छात्राओं के लिए आवेदन गाइड.* Retrieved from बिहार जॉब पोर्टल
6. Government of Bihar. (2023). *Mukhyamantri Kanya Utthan Yojana: Overview and Objectives*. Retrieved from Overview
7. Bihar Official Portal. (2024). *Mukhyamantri Kanya Utthan Yojana: Online Registration and Payment Status*. Retrieved from Official Portal Guide
8. Bihar Job Guide. (2022). *Mukhyamantri Kanya Utthan Yojana: Eligibility Criteria and Required Documents*. Retrieved from Graduation Guide

❧

महिला नेतृत्व के विकास में स्वयं सहायता समूह (SHG) की भूमिका

डॉ. मुन्ना सिंह*

सारांश (Abstract)

महिला स्वयं संहायता समूह (Self Help Group) ग्रामीण और शहरी महिलाओं के आर्थिक एवं सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन चुके हैं। आज केवल बचत और ऋण तक सीमित नहीं है, बल्कि ये महिलाओं में नेतृत्व क्षमता, आत्मविश्वास और निर्णय लेने की शक्ति का भी विकास करते हैं। इस शोध–पत्र का उद्देश्य महिला नेतृत्व के विकास में SHG की भूमिका का अध्ययन करना है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि SHG महिलाओं को सामूहिक निर्णय, सामाजिक भागीदारी, राजनीतिक जागरुकता तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता के माध्यम से नेतृत्व कर अवसर प्रदान करते हैं। SHG से जुड़ी महिलाएँ पंचायत, सामाजिक संगठनों और स्थानीय प्रशासन में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं।

शोध में यह भी स्पष्ट हुआ है कि SHG महिलाओं को सामाजिक बंधनों से बाहर निकलने, अपने अधिकारों के प्रति जागरुक होने तथा परिवार एवं समाज में सम्मान प्राप्त करने में सहायता प्रदान करते हैं। हालांकि अशिक्षा, गरीबी, तकनीकी ज्ञान की कमी और सामाजिक रूढ़िवाद जैसी चुनौतियाँ अब भी मौजूद हैं। फिर भी SHG महिला नेतृत्व विकास का एक प्रभावी साधन सिद्ध हो रहे हैं।

मुख्य शब्द (Keywords) : महिला नेतृत्व, स्वयं सहायता समूह (SHG), महिला सशक्तिकरण, आत्मनिर्भरता, ग्रामीण विकास, सामाजिक जागरुकता, राजनीतिक भागीदारी, आर्थिक विकास, नेतृत्व क्षमता, माइक्रों फाइनेंस।

प्रस्तावना (Introcfuction)

भारत में महिलाओं की स्थिति ऐतिहासिक रूप से पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था से प्रभावित रही है। लंबे समय तक महिलाओं को शिक्षा, रोजगार, संपत्ति और निर्णय लेने के आधिकारों से वंचित रखा गया। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएँ आर्थिक निर्भरता, अशिक्षा और सामाजिक प्रतिबंधों के कारण विकास की मुख्यधारा से दूर रहीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान ने महिलाओं को समानता, स्वतंत्रता और न्याय का अधिकार प्रदान किया। इसके बावजूद सामाजिक एवं आर्थिक असमानताएँ लंबे समय तक बनी रहीं। महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए सरकार द्वारा अनेक योजनाएँ प्रारम्भ की गई, जिनके स्वयं सहायता समूह (SHG) कार्यक्रम अत्यंत महत्वपूर्ण है।

SHG महिलाओं को संगठित कर बचत, ऋण और स्वरोजगार के माध्यम से आर्थिक रूप से सक्षम बनाते हैं। इसके साथ ही समूह बैठकों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों और सामाजिक गतिविधियों के माध्यम से महिलाओं में नेतृत्व क्षमता का भी विकास होता है। आज SHG महिलाओं को केवल आर्थिक रूप से ही नहीं बल्कि सामाजिक और राजनीतिक रूप से भी सशक्त बना रहे है। ग्रामीण भारत में महिलाएँ SHG से जुड़कर पंचायत प्रतिनिधि, सामाजिक कार्यकर्ता और सफल उद्यमी के रूप में उभर रही है।

महिला नेतृत्व की अवधारणा

नेतृत्व वह क्षमता है जिसके माध्यम से कोई व्यक्ति दूसरों को प्रेरित, निर्देशित और संगठित करता है ताकि सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके। महिला नेतृत्व का अर्थ महिलाओं की उस क्षमता से है जिसके द्वारा वे परिवार, समाज, राजनीति और आर्थिक क्षेत्र में निर्णय लेने और नेतृत्व प्रदान करने की भूमिका निभाती है।

महिला नेतृत्व के प्रमुख तत्व :

- आत्मविश्वास
- निर्णय लेने की क्षमता
- संगठनात्मक कौशल
- सामाजिक सहभागिता
- संवाद क्षमता

* पूर्व शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

- समस्या समाधान क्षमता
- सामूहिक कार्य करने की योग्यता

महिलाओं में नेतृत्व क्षमता का विकास समाज के समग्र विकास के लिए आवश्यक है क्योंकि महिलाएँ परिवार और समुदाय दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

स्वयं सहायता समूह (SHG) की अवधारणा

स्वयं सहायता समूह, ऐसे छोटे स्वैच्छिक समूह होते हैं जिनमें सामान्यतः 10–20 सदस्य शामिल होते हैं। ये सदस्य नियमित रूप से बचत करते हैं तथा सामूहिक रूप से ऋण और अन्य आर्थिक गतिविधियों का संचालन करते हैं। भारत में SHG आन्दोलन को बढ़ावा देने में NABARD की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। SHG बैंक लिंकेज कार्यक्रम के माध्यम से लाखों महिलाओं को बैंकिंग सेवाओं और ऋण सुविधाओं से जोड़ा गया।

आज की प्रमुख विशेषताएँ:–

- नियमित बचत
- सामूहिक निर्णय प्रणाली
- आंतरिक ऋण व्यवस्था
- आर्थिक आत्मनिर्भरता
- सामूहिक उत्तरदायित्व
- महिला सहभागिता
- सामाजिक जागरुकता

महिला नेतृत्व के विकास में SHG की भूमिका

(1) आत्मविश्वास और आत्मसम्मान का विकास – SHG महिलाओं को सार्वजनिक रूप से बोलने, विचार व्यक्त करने और समस्याओं पर चर्चा करने का अवसर प्रदान करते हैं। समूह बैठकों में नियमित भागीदारी से महिलाओं का आत्मविश्वास बढ़ता है। जो महिलाएँ पहले घर की चारदीवारी तक सीमित थीं। वे अब ग्राम सभा और सामाजिक कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से भाग लेने लगी है। इससे उनमें आत्मसम्मान और पहचान की भावना विकसित होती है।

(2) आर्थिक सशक्तिकरण और नेतृत्व विकास – आर्थिक स्वतंत्रता नेतृत्व विकास का आधार है। आज महिलाओं को बचत, ऋण और स्वरोजगार के माध्यम से आर्थिक रूप से सशक्त बनाते है।
महिलाएँ SHG के माध्यम से निम्न कार्य कर रही है–

- डेयरी व्यवसाय
- सिलाई
- अगरबती निर्माण
- हस्तशिल्प कार्य
- कृषि आधारित उद्योग
- खाद्य प्रसंस्करण

जब महिलाएँ आय अर्जित करने लगती है। तो परिवार और समाज में उनकी स्थिति मजबूत होती है। इससे वे निर्णय लेने में अधिक सक्षम बनती हैं।

(3) निर्णय लेने की क्षमता का विकास :–

SHG महिलाओं को सामूहिक निर्णय प्रक्रिया में शामिल करते हैं।

समूह की बैठकों में महिलाएँ बचत ऋण, निवेश और सामाजिक कार्यों से जुड़े निर्णय लेती हैं। इस प्रक्रिया में उनमें नेतृत्व क्षमता, प्रबंधन कौशल, वित्तिय समझ, समस्या समाधान क्षमता का विकास होता है।

(4) सामाजिक जागरूकता का विस्तार :–

SHG महिलाओं को सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक बनाते हैं। अब महिलाएँ निम्न मुद्दों पर आवाज उठा रहीं हैं – बाल–विवाह, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, लैंगिक भेदभाव, जमाखोरी, बालश्रम इत्यादि। SHG के माध्यम से महिलाएँ सामाजिक अभियानों का नेतृत्व कर रही हैं और समाज में सकारात्मक परिवर्तन ला रहीं है।

(5) राजनीतिक नेतृत्व का विकास :–

SHG महिलाओं को पंचायत और स्थानीय प्रशासन में भागीदारी के लिए प्रेरित करते हैं।

SHG का राजनीतिक प्रभाव :–

- पंचायत चुनावों में भागीदारी बढ़ी
- ग्राम सभा में महिलाओं की उपस्थिति बढ़ी
- सरकारी योजनाओं की निगरानी में सहभागिता बढ़ी
- स्थानीय समस्याओं के समाधान में महिलाओं की भूमिका मजबूत हुई।
- आज कई महिलाएँ SHG के माध्यम से ग्राम प्रधान, वार्ड सदस्य और जिला पार्षद सदस्य के रूप में कार्य कर रही है।

(6) सामूहिक नेतृत्व और संगठन क्षमता का विकास :–

SHG सामूहिक नेतृत्व की भावना को बढ़ावा देते है। महिलाएँ एक–दूसरे की समस्याओं को समझती है और मिलकर समाधान खोजती हैं। इससे उनमें सहयोग की भावना, टीमवर्क, संगठनात्मक क्षमता और सामाजिक एकता का विकास होता है।

(7) शिक्षा और जागरुकता में वृद्धि :–

SHG महिलाओं की शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रमों से जोड़ते हैं। महिलाओं को वित्तीय साक्षरता, स्वास्थ्य, पोषण और कानूनी अधिकारों के बारे में जानकारी दी जाती है। शिक्षा और जागरुकता के माध्यम से महिलाएँ अपने अधिकारों को समझने और उनके लिए संघर्ष करने में सक्षम बनती है।

(8) डिजिटल नेतृत्व का विकास :–

डिजिटल इंडिया अभियान के बाद SHG महिलाओं को डिजिटल बैंकिंग और ऑनलाइन विपणन से जोड़ा गया है। महिलाएँ अब UPI भुगतान, मोबाइल बैंकिंग, ऑनलाइन मार्केटिंग, सोशल मीडिया प्रचार का उपयोग कर रही हैं। इससे उनमें आधुनिक नेतृत्व क्षमता और तकनीकी दक्षता का विकास हो रहा है।

SHG के समक्ष चुनौतियाँ :–

हॉलकि SHG महिला नेतृत्व विकास में प्रभावी भूमिका निभा निभा रहे हैं। फिर भी कई समस्याएँ मौजूद है। प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार से है :–

(1) अशिक्षा – ग्रामीण क्षेत्रों में कई महिलाएँ शिक्षित नहीं है योजनाओं और प्रशिक्षण का पूरा लाभ नहीं उठा पाती।

(2) सामाजिक रुढ़िवाद – पितृसतात्मक सोच और सामाजिक प्रतिबंध महिलाओं की स्वतंत्रता को सीमित करते हैं।

(3) वित्तीय संसाधनों की कमी – कई SHG को पर्याप्त ऋण और वित्तीय सहायता नहीं मिल पाती।

(4) तकनीकी ज्ञान का अभाव – डिजिटल तकनीक और आधुनिक बाजार की जानकारी का अभाव SHG की प्रगति में बाधा बनता है।

(5) विपणन की समस्याएँ – महिलाओं द्वारा निर्मित उत्पादों को उचित बाजार नहीं मिल पाना भी एक समस्या है।

(6) सरकारी योजनाओं की जानकारी का अभाव – कई महिलाएँ सरकारी योजनाओं की जानकारी के अभाव में सरकारी योजनाओं और सुविधाओं से अनभिज्ञ रहती है।

सुझाव (Suggestions):

- महिलाओं के लिए नेतृत्व प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाएं।
- SHG को अधिक से अधिक बैंक ऋण और वित्तीय सहायता प्रदान किए जा रहे हैं।
- डिजिटल शिक्षा और तकनीकी प्रशिक्षण बढ़ाया जाए।
- SHG उत्पादों के लिए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार उपलब्ध कराया जाए।
- ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता अभियान चलाए जाएँ।
- महिलाओं को राजनीतिक भागीदारी के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
- सरकारी योजनाओं की जानकारी गाँव स्तर तक पहुंचाई जाए।
- SHG के लिए नियमित प्रशिक्षण और कार्यशालाएँ आयोजित की जाए।

निष्कर्ष (Conclusion)

स्वयं सहायता समूह महिलाओं के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण का एक प्रभावी माध्यम है। SHG महिलाओं में आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता और नेतृत्व क्षमता का विकास करते है। महिलाएँ SHG के माध्यम से मजबूत हो रही हैं तथा पंचायत और सामाजिक संगठनों में नेतृत्वकारी भूमिका निभा रही

है। इससे समाज में महिलाओं की स्थिति और सम्मान में वृद्धि हुई है। हालाकि अशिक्षा, सामाजिक रूढ़ियाँ और वित्तीय सीमाएँ जैसी चुनौतियाँ अब भी मौजूद है। लेकिन उचित प्रशिक्षण, सरकारी सहयोग और सामाजिक समर्थन के माध्यम से SHG को और अधिक प्रभावी बनाया जा सका है। अतः यह कहा जा सकता है कि SHG महिला नेतृत्व विकास और महिला सशक्तिकरण के लिए एक महत्वपूर्ण और परिवर्तनकारी साधन है।

संदर्भ सूची (References) :

अग्रवाल, जी. (2018). महिला सशक्तिकरण और ग्रामीण विकास, नई दिल्लीः रावत पब्लिकेशन।
सिंह, आर (2020). स्वयं सहायता समूह और महिला विकास, जयपुर : प्वाइंटर पब्लिशर्स।
शर्मा, पी. (2019). महिला नेतृत्व एवं सामाजिक परिवर्तन, नई दिल्ली, राजस्थानी ग्रंथागार।
यादव, के. (2021). ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक सशकिकरण, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन।
मिश्रा, एस. (2017). स्वयं सहायता समूहः अवधारणा और विकास, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन।
दुबे, ए. (2022). महिला सशक्तिकरण के सामाजिक आयाम, नई दिल्ली, अटलांटिक पब्लिशर्स।
चौधरी, आर. (2018). पंचायती राज और महिला नेतृत्व, जयपुर : आविष्कार पब्लिशर्स।
कुमार, वी. (2020). ग्रामीण विकास में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका, पटना : ज्ञानदीप प्रकाशन।
भारतीय रिजर्व बैंक (2021). भारत में बैंकिंग की प्रगति पर रिपोर्ट : मुंबई RBL प्रकाशन।
राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) (2022). भारत में माइक्रोफाइनेंस की स्थिति रिपोर्ट : मुंबई : NABARD प्रकाशन।

रोहतास जिला की आर्थिक विकास की बाधाएँ एवं निराकरण : समस्याएँ एवं समाधान

डॉ. सविता सिंह*

सारांश (Abstract)

रोहतास जिला बिहार के महत्वपूर्ण जिलों में से एक है, जिसकी अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित है। जिले में प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता होने के बावजूद आर्थिक विकास अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुँच पाया है। बेरोजगारी, औद्योगिक पिछड़ापन, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, आधारभूत संरचना की कमजोर स्थिति तथा कृषि संबंधी समस्याएँ आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं। इस शोध-पत्र में रोहतास जिले की आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण करते हुए उनके समाधान के उपाय प्रस्तुत किए गए हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यदि कृषि आधुनिकीकरण, औद्योगिक विकास, कौशल प्रशिक्षण, महिला सशक्तिकरण तथा सरकारी योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाए, तो जिले का समग्र आर्थिक विकास संभव है।

मुख्य शब्द : आर्थिक विकास, रोहतास जिला, बेरोजगारी, कृषि, औद्योगिक विकास, आधारभूत संरचना।

प्रस्तावना

आर्थिक विकास किसी भी क्षेत्र की सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नति का आधार होता है। बिहार का रोहतास जिला ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह जिला उपजाऊ भूमि, खनिज संसाधनों तथा कृषि उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। सोन नदी तथा नहर प्रणाली यहाँ की कृषि को सहायता प्रदान करती है। इसके बावजूद जिले में गरीबी, बेरोजगारी तथा औद्योगिक विकास की कमी जैसी समस्याएँ विद्यमान हैं।

वर्तमान समय में आर्थिक विकास केवल आय वृद्धि तक सीमित नहीं है, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, आधारभूत संरचना तथा सामाजिक समानता से भी जुड़ा हुआ है। रोहतास जिले में इन क्षेत्रों में कई चुनौतियाँ देखने को मिलती हैं। इसलिए इस शोध-पत्र का उद्देश्य जिले के आर्थिक विकास में आने वाली बाधाओं का अध्ययन करना तथा उनके समाधान प्रस्तुत करना है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. रोहतास जिले की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
2. आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करने वाले प्रमुख कारकों की पहचान करना।
3. कृषि, उद्योग एवं रोजगार संबंधी समस्याओं का विश्लेषण करना।
4. आर्थिक विकास के लिए संभावित समाधान प्रस्तुत करना।

अनुसंधान पद्धति

यह शोध-पत्र द्वितीयक तथ्यों (Secondary Data) पर आधारित है। अध्ययन हेतु सरकारी रिपोर्ट, जनगणना आँकड़े, पुस्तकें, शोध-पत्र, समाचार-पत्र तथा इंटरनेट स्रोतों का उपयोग किया गया है। विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है।

रोहतास जिला : एक परिचय

रोहतास जिला बिहार के दक्षिण-पश्चिम भाग में स्थित है। इसका मुख्यालय सासाराम है। यह जिला ऐतिहासिक दृष्टि से शेरशाह सूरी के मकबरे तथा रोहतासगढ़ किले के लिए प्रसिद्ध है। जिले की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है और कृषि मुख्य व्यवसाय है।

प्रमुख आर्थिक गतिविधियाँ

- कृषि
- पशुपालन
- पत्थर उद्योग
- लघु व्यापार

---

* वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

- श्रम आधारित कार्य

आर्थिक विकास की प्रमुख बाधाएँ

1. कृषि संबंधी समस्याएँ

रोहतास जिले की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित होने के बावजूद कृषि क्षेत्र कई समस्याओं से प्रभावित है।

(क) सिंचाई की कमी

हालाँकि सोन नहर प्रणाली उपलब्ध है, फिर भी कई क्षेत्रों में पर्याप्त सिंचाई सुविधा नहीं है। वर्षा पर निर्भरता किसानों की आय को प्रभावित करती है।

(ख) पारंपरिक कृषि पद्धति

अधिकांश किसान आधुनिक तकनीकों एवं उन्नत बीजों का सीमित उपयोग करते हैं, जिससे उत्पादन कम होता है।

(ग) भूमि का विखंडन

छोटे एवं बिखरे भूमि जोत आर्थिक उत्पादन को सीमित करते हैं।

समाधान

- आधुनिक कृषि तकनीक का उपयोग।
- सिंचाई परियोजनाओं का विस्तार।
- कृषि ऋण एवं सब्सिडी की व्यवस्था।
- किसानों को प्रशिक्षण प्रदान करना।

2. औद्योगिक पिछड़ापन

रोहतास जिले में औद्योगिक विकास अपेक्षाकृत धीमा है। पहले डेहरी-ऑन-सोन क्षेत्र में औद्योगिक गतिविधियाँ सक्रिय थीं, किंतु वर्तमान में अनेक उद्योग बंद हो चुके हैं।

प्रमुख समस्याएँ

- बड़े उद्योगों का अभाव
- पूंजी निवेश की कमी
- तकनीकी प्रशिक्षण संस्थानों का अभाव
- बिजली एवं परिवहन की समस्या

समाधान

- लघु एवं कुटीर उद्योगों को बढ़ावा।
- औद्योगिक क्षेत्रों की स्थापना।
- युवाओं के लिए कौशल विकास कार्यक्रम।
- निवेशकों को प्रोत्साहन।

3. बेरोजगारी एवं पलायन

रोजगार के पर्याप्त अवसर न होने के कारण जिले के युवा अन्य राज्यों में पलायन करते हैं। यह सामाजिक एवं आर्थिक दोनों दृष्टियों से समस्या है।

समाधान

- स्थानीय उद्योगों का विकास।
- स्वरोजगार योजनाओं का विस्तार।
- मनरेगा एवं ग्रामीण रोजगार योजनाओं का प्रभावी संचालन।
- SHG (Self Help Group) को प्रोत्साहन।

4. शिक्षा एवं कौशल विकास की कमी

ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता कमजोर है। तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा संस्थानों की कमी के कारण युवाओं में कौशल विकास नहीं हो पाता।

समाधान

- तकनीकी शिक्षा संस्थानों की स्थापना।
- डिजिटल शिक्षा का विस्तार।

- कौशल विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम।
- महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान।

5. आधारभूत संरचना की समस्या

आर्थिक विकास के लिए सड़क, बिजली, संचार एवं परिवहन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। रोहतास जिले के कई ग्रामीण क्षेत्रों में ये सुविधाएँ अपर्याप्त हैं।

समाधान

- ग्रामीण सड़क निर्माण।
- नियमित बिजली आपूर्ति।
- इंटरनेट एवं संचार सुविधाओं का विस्तार।

6. स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी

स्वास्थ्य सेवाओं की कमी के कारण श्रमिकों की कार्यक्षमता प्रभावित होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में अस्पताल एवं चिकित्सकों की कमी देखी जाती है।

समाधान

- प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों का विकास।
- डॉक्टरों एवं दवाओं की उपलब्धता।
- स्वास्थ्य जागरूकता अभियान।

महिला सशक्तिकरण एवं SHG की भूमिका

स्वयं सहायता समूह (SHG) ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने में सहायक हैं। ये समूह बचत एवं ऋण के माध्यम से महिलाओं को छोटे व्यवसाय शुरू करने में मदद करते हैं।

SHG के लाभ

- महिलाओं की आय में वृद्धि
- स्वरोजगार के अवसर
- सामाजिक जागरूकता
- गरीबी उन्मूलन में सहायता

सरकारी योजनाओं की भूमिका

सरकार द्वारा चलाई जा रही अनेक योजनाएँ रोहतास जिले के आर्थिक विकास में सहायक हो सकती हैं–

1. प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना
2. मनरेगा
3. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन
4. प्रधानमंत्री मुद्रा योजना
5. स्टार्टअप इंडिया योजना

इन योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन विकास की गति को तेज कर सकता है।

निष्कर्ष

रोहतास जिले में आर्थिक विकास की अपार संभावनाएँ हैं, किंतु कृषि समस्याएँ, औद्योगिक पिछड़ापन, बेरोजगारी, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी तथा कमजोर आधारभूत संरचना इसके विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं। यदि सरकार, प्रशासन एवं स्थानीय जनता मिलकर योजनाबद्ध प्रयास करें, तो इन समस्याओं का समाधान संभव है। आधुनिक कृषि, औद्योगिक निवेश, कौशल विकास, महिला सशक्तिकरण तथा सरकारी योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन के माध्यम से रोहतास जिले को आर्थिक रूप से समृद्ध बनाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, आर. बी. (2018). *बिहार का आर्थिक भूगोल.* पटना: बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी।
2. शर्मा, जी. पी. (2019). *ग्रामीण विकास एवं भारतीय अर्थव्यवस्था.* नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन।
3. यादव, एम. के. (2020). *कृषि एवं ग्रामीण विकास.* वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन।

4. कुमार, एस. (2017). *बिहार में औद्योगिक विकास की समस्याएँ.* पटना: ज्ञानदीप प्रकाशन।
5. भारत सरकार. (2021). *बिहार आर्थिक सर्वेक्षण रिपोर्ट.* नई दिल्ली: वित्त मंत्रालय।
6. जनगणना विभाग भारत सरकार. (2011). *जनगणना रिपोर्ट: बिहार.* नई दिल्ली: भारत सरकार प्रकाशन।
7. मिश्रा, डी. एन. (2016). *भारतीय ग्रामीण समाज एवं विकास.* इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
8. चौधरी, आर. एस. (2018). *भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था.* नई दिल्ली: साहित्य भवन।
9. बिहार उद्योग विभाग. (2020). *औद्योगिक विकास रिपोर्ट: रोहतास जिला.* पटना: बिहार सरकार।
10. प्रसाद, एल. (2019). *भारत में पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास.* नई दिल्ली: ओरिएंट पब्लिकेशन।
11. सिंह, वी. पी. (2021). "रोहतास जिले का सामाजिक एवं आर्थिक अध्ययन." *भारतीय सामाजिक शोध पत्रिका,* 12(3), 45-58।
12. कुमार, अजय.(2022). "बिहार में कृषि एवं औद्योगिक विकास का अंतर्संबंध."*आर्थिक समीक्षा पत्रिका,* 8(2),66-74।
13. शुक्ला, पी. (2020). *परिवहन एवं क्षेत्रीय विकास.* नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स।
14. वर्मा, आर. के. (2017). *भारतीय अर्थव्यवस्था: संरचना एवं विकास.* जयपुर: यूनिवर्सिटी बुक हाउस।
15. बिहार सरकार. (2022). *रोहतास जिला सांख्यिकी पुस्तिका.* पटना: योजना एवं विकास विभाग।